ISSN No.2319 – 622X

RNI No.HARHIN/2009/34360

वर्ष-05 अंक-01 (पूर्णांक-9)

15 सितम्बर, 2013-14 मार्च, 2014

पृष्ठ-48 मूल्य-25 रुपये

बाबूजी का भारतमित्र

सम्पादक
रघुविन्द्र यादव

पुण्य-स्मरण
18 सितम्बर

बाबू बालमुकुंद गुप्त

छोड़ चले शाइस्ता-खानी

रोती छोड़ी प्यारी रानी,
उम्मीदों पर फेरा पानी,
है है उसकी अभी जवानी
यह क्या तुमने दिल में ठानी,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

पहले तो यह धूम मचाई,
मुल्कों-मुल्कों फिरी दुहाई,
अब यह कैसे जी में आई,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

फिर से जारी की नवाबी,
फिर से छलका रंग गुलाबी,
ढाके में फैली शादाबी,
पर यह कैसे हुई खराबी,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

नव्वाबी की शान निराली,
सब कहते थे खूब निकाली,
मिलता न था मिजाजे आली,
पर अब तो पिटती है ताली,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

पाँच सदी का गया ज़माना,
आप चाहते थे फिर लाना,
फिर से वहशीपन फैलाना,
उधड़ गया सब ताना-बाना,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

रोक स्वदेशी की, की भारी,
नादिरशाही करके जारी,
हुई सजाओं की भरमारी,
आख़िर करके अपनी ख़्वारी,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

जारी करें सरकुलर लायन,
और एमरसन ठोकें फायन,
हाकिम पुलिस हुए कम्बाइन,
पर यह समय बड़ा है डाइन,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

गुरुखों की पलटन बुलवाई,
जगह-जगह पर पुलिस चढ़ाई,
लाठी की फिर गई दुहाई,
पर वह भी कु छ काम न आई,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

खूब अमन में लठ चलवाया,
कितनों ही का सिर तुड़वाया,
नाहक पकड़ जेल भिजवाया,
आख़िर वह दिन आगे आया,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

बरीसाल की देख तबाही,
भूली दुनिया सिक्खाशाही,
बृटिश रूल पर फेरी स्याही,
ख़त्म हुई अब आलीजाही,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

लड़के बच्चे खूब बिगाड़े,
कितने ही स्कूल उजाड़े,
मारामार हुई दिनधाड़े,
पर कुछ भी नहिं आया आड़े,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

बूढ़ेपन की लाज न आई,
लड़कों ने की खूब लड़ाई,
कुछ नहिं सोचा बात बढ़ाई,
इसी सबब से मुँह की खाई,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

सुनी उदय पटनी की लीला,
किया मार्ली ने तब ढीला,
चला न कुछ भी वां पै हीला,
आख़िर को मुँह हो गया पीला,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

गये आगरे से बुलवाये,
जैसे गये न वैसे आये,
बिगड़े कर्जन के बहकाये,
आकर यह सब फूल खिलाये,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

भूल गये थे तुम क्रिस्तानी,
करते थे अपनी मनमानी,
पर यह दुनिया तो है फानी,
आप चले रह गई कहानी,
छोड़ चले शाइस्ता-खानी।

वर्ष 1906 में 'भारतमित्र' में प्रकाशित बाबू जी की कविता
-साभार बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली
संपादक-डॉ.नत्थन सिंह

(शोध एवं साहित्य की राष्ट्रीय पत्रिका)

बाबूजी का भारतमित्र

अर्धवार्षिक

वर्ष-05 अंक-01 (पूर्णांक-9) पृष्ठ : 48

15 सितम्बर, 2013 - 14 मार्च, 2014

सम्पादकीय सलाहकार

श्री विजय सहगल

(पूर्व सम्पादक, दैनिक ट्रिब्यून)

डॉ. चन्द्र त्रिखा

(पूर्व निदेशक, हरियाणा साहित्य अकादमी)

सम्पादक

रघुविन्द्र यादव

सम्पर्क:

'प्रकृति भवन', नीरपुर, नारनौल

(हरियाणा) - 123001

फोन: 09416320999, 09034343679

raghuvinderyadav@gmail.com

आवरण व रेखाचित्र-

ओमप्रकाश कादयान

सहयोग राशि: 25 रुपए एक प्रति

पंच वार्षिक सदस्य: 250 रुपये

आजीवन सदस्य: 1100 रुपये

संरक्षक सदस्य: 3100 रुपये

संरक्षक:

बाबू बालमुकुन्द गुप्त पत्रकारिता एवं साहित्य संरक्षण परिषद, रेवाड़ी (हरि.)

प्रकाशन-संपादन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक।

संपादक का लेखकों के विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं। न्यायक्षेत्र नारनौल

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक रघुविन्द्र यादव द्वारा चामुण्डा प्रिण्टर्स, बड़ा तालाब, रेवाड़ी से मुद्रित करवाकर प्रकृति भवन, नीरपुर, नारनौल (हरि.) से प्रकाशित।

किसे कहाँ खोजें

2. आपने लिखा
3. सम्पादकीय

ग़ज़लें/गीतिका

4. राजेन्द्र नाथ रहबर, रमेश सिद्धार्थ शम्मी-शम्स-वारसी,
5. महेन्द्र मिहोनवी, मो.क़ासिम खॉन, आचार्य भगवत दुबे, विज्ञान व्रत, ज्ञानेन्द्र 'साज'
6. अनुराग मिश्र, अंसार क़ंबरी, रहबर, सुरेश मक्कड़, दिनेश रस्तोगी
7. सत्यवीर मानव, डॉ.लोक सेतिया, रमेश जोशी

दोहा/कुंडलिया छंद

8. महेन्द्र जैन, रघुविन्द्र यादव
9. खान रशीद दर्द, अनिल श्रीवास्तव
10. जितेन्द्र जौहर, अशोक अंजुम
11. डॉ.मनोहर अभय, अनंतराम मिश्र
12. तुकाराम वर्मा
13. त्रिलोक सिंह ठकुरेला, शिवकुमार दीपक, राजकुमार राज
14. संजीव सलील, डॉ.सतीश चन्द्र

गीत-नवगीत/कविताएँ

15. कृपा शंकर शर्मा, चन्द्रसेन विराट
16. आ.राकेश बाबू, शिवानंद सहयोगी
17. रामसनेही लाल शर्मा यायावर, रजनी मोरवाल, राजेश प्रभाकर
18. यतीन्द्र नाथ राही, दर्शन शर्मा, कृष्ण कुमार कनक

कथाएँ

19. मधुकांत
24. गार्गीशरण मिश्र मराल, घमंडीलाल अग्रवाल
25. डॉ.सुधा ओम ढ़ींगरा
30. डॉ.सुरेन्द्र मंथन
31. कमलेश भारतीय, देवी नागरानी, आकांक्षा यादव
32. शशि पुरवार, रत्न कुमार साँभरिया

पुस्तक समीक्षाएँ

33. सत्यवीर नाहड़िया, कृष्णलता यादव, शिवओम अम्बर, डॉ. लोक सेतिया, रघुविन्द्र यादव, घमंडीलाल अग्रवाल
40. सांस्कृतिक गतिविधियाँ

शोध आलेख

42. मनोज कुमार सिंह

आवश्यक-सूचना

''बाबूजी का भारतमित्र'' घर बैठे प्राप्त करने के लिए सहयोग राशि पत्रिका की प्रबंधक **श्रीमती शील यादव** के बैंक खाता नम्बर **3338000100015136, पंजाब नैशनल बैंक, नसीबपुर** में निम्न विवरणानुसार जमा करवा सकते हैं। ऑन लाइन राशि ट्राँसफर करने के लिए **आई.एफ.एस.सी. कोड-पीयूएनबी0333800** है। सहयोग राशि-

संरक्षक सदस्य-3100 रुपये

आजीवन सदस्य-1100 रुपये

पंच वार्षिक सदस्य-250 रुपये

सहयोग राशि मनीआर्डर से भी संपादकीय पते पर श्रीमती शील यादव के नाम भेजी जा सकती है।

-संपादक

संरक्षक सदस्य

डॉ.सत्यवीर मानव, 642/1, नारनौल

श्री अशोक यादव, मंडी अटेली

प्राचार्य अभयराम यादव, महेन्द्रगढ़

श्री सत्यवीर नाहड़िया, रेवाड़ी

श्री मधुकांत, सांपला

आजीवन सदस्य

श्रीमती कृष्णलता यादव, गुड़गाँव।

मा. संतलाल यादव, नारनौल।

श्री हेमन्त कृष्ण, सिहमा

श्री प्रेमप्रकाश यादव, नाहड़, रेवाड़ी।

श्री शिवताज आर्य, कोथल खुर्द, म.गढ़

श्री बस्तीराम 'बस्ती', मंडी अटेली।

श्री विनोद यादव, हनुमानगढ़।

श्री बाबूलाल यादव, कोटिया।

श्री छतर सिंह वर्मा-कवि, मंडी अटेली

श्री असीम राव-पत्रकार, नारनौल।

श्री दलबीर जौहरी, नांगल चौधरी

श्री दयाराम यादव, नांगल चौधरी

श्री रामेश्वर दयाल पहलवान, नां. चौधरी

श्री नंदलाल नियारा-प्रवक्ता, सैदअलिपुर

डॉ.दलीप सिंह यादव, नारनौल।

श्री पूर्णसिंह यादव-एडवोकेट, दिल्ली

आपने लिखा

आपकी अर्धवार्षिक पत्रिका 'बाबूजी का भारतमित्र' प्राप्त हुई। इस बार आपने जो देशभर के सुप्रसिद्ध दोहाकारों के दोहे संकलित किये हैं उनको पढ़कर बहुत आनंद आया, क्योंकि सभी बहुत अच्छे हैं। सबसे अच्छी बात मुझे ये लगी कि आपने हिन्दी भाषा भाषी और उर्दू भाषा भाषी दोनों के साहित्यकारों को इसमें स्थान देकर हिन्दी-उर्दू के बीच सेतु का कार्य किया है। साथ ही आपके चयन कौशल को भी बधाई देना चाहता हूँ ।

-पदमभूषण नीरज, अलीगढ़

'बाबूजी का भारतमित्र' का मार्च, 2013 अंक दस्तयाब हुआ। इससे पूर्व का दोहा अंक भी मिला। पत्रिका के दोनों अंक मेयारी और इंतख़ाबी हैं। आपकी सलाहियत और अदबी इंतिख़ाब का अक्स दोनों में साफ-साफ दिखाई देता है। बहुत कम वक़्त में आपकी इशाअत और पैनी नज़र के मातहत रिसाले ने अपना अलग मुकाम हासिल कर लिया है। इसके लिए आप मुबारकवाद के मुस्तहक हैं। ये रिसाला इसी तरह से तरक्की करता रहे।

-शम्मी-शम्स-वारसी, आबूरोड़

'बाबूजी का भारत मित्र' की लेखकीय प्रति समय पर मिल गई थी। दोहा विशेषांक तो आपका लाजवाब था ही, इस अंक में भी अनेक रचनाकारों की रचनाएँ प्रेरणास्पद हैं। आपका चयन समसामयिकता की ओर है, जो समाज और देश की आवश्यकता है। राजनीतिक दोनों बड़े दलों की मानसिकता का चित्रण आपके सम्पादकीय में छपे दोहे से स्पष्ट है।

-ज्ञानेन्द्र साज, अलीगढ़

पत्रिका का नियमित पाठक बनकर बड़ी सुखद प्रतीति हुई, एक कोने में हूक भी उठी कि आखिर इतनी सुरुचिपूर्ण साहित्यिक पत्रिका का सदस्य मैं पहले क्यों नहीं बना। मार्च-सितंबर, 2013 के अंक में अपने बहुत से चिर-परिचित समर्थ कवियों/लेखकों की रचनाएँ पढ़कर भावविभोर हो गया।

सदस्यों को पत्रिका समय से मिल जाये, इसके लिए आपका व्यक्तिगत सम्पर्क करना साहित्य और पत्रिका के प्रति आपके प्रगाढ़ प्रेम को प्रदर्शित करता है। गद्य और काव्य के विभिन्न स्तम्भों में प्रकाशित अधिकांश रचनायें शिल्प और भाव की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। यशस्वी सम्पादक और सम्पूर्ण सम्पादक मण्डल को हार्दिक बधाई।

-रामशंकर वर्मा, लखनऊ

○ सम्पादकीय

अकविता आंदोलन ने भारतीय सनातनी छंदों को भारी नुकसान पहुँचाया। एक ऐसा वातावरण तैयार किया गया कि छंद हाशिये पर चले गये और गद्य कविता प्रमुखता से प्रकाशित होने लगी, किंतु छंदों के रसिकों और छंद रचने वालों के प्रयास से इनकी वापसी शुरू हो चुकी है। दोहा आज अपने उत्कर्ष के चरम पर है। न सिर्फ हिन्दी बल्कि उर्दू के रचनाकार भी दोहे रच रहे हैं। शायर और गीतकार भी खुद को दोहाकार कहलाना पसंद करने लगे हैं। इसी प्रकार अब कुण्डलिया छंद की भी प्रभावी वापसी हो रही है। गिरधर कविराय के बाद कोई सशक्त कुण्डलियाकार पैदा न होने के कारण यह छंद लुप्तप्राय: हो गया था। मगर अब न सिर्फ व्यक्तिगत कुण्डलिया संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं, बल्कि कुण्डलिया संकलनों का प्रकाशन भी शुरू हो गया है। पत्र-पत्रिकाएँ भी इस छंद को प्रमुखता से स्थान दे रहे हैं। 'बाबूजी का भारतमित्र' ने भी छंदों को लोकप्रिय और समृद्ध बनाने की इस मुहिम में ऐतिहासिक दोहा विशेषांक के बाद अब कुण्डलिया छंद विशेषांक प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। अगला अंक जो मार्च, 2014 में प्रकाशित होगा वह कुण्डलिया छंद विशेषांक होगा। इसमें केवल मानक कुण्डलिया ही प्रकाशित किये जाएँगे। मानकों की जानकारी पृष्ठ 7 पर 'विशेषांक सूचना' के कॉलम में देखी जा सकती है। इस विशेषांक को भी ऐतिहासिक बनाने के लिए आप सभी का रचनात्मक सहयोग अपेक्षित है।

साहित्य में शोध का स्तर भी मानव मूल्यों की तरह लगातार गिर रहा है। तथाकथित शोध निर्देशक गुणवत्ता की बजाए संख्या बढ़ाने और धन कमाने में लगे हुए हैं। जब से पी.एच.डी. और एम.फिल. के थीसिस/डिग्रियाँ बाज़ार में बिकने लगे हैं, स्थिति और भी खराब हो गई है। निम्नस्तरीय पुस्तकों पर शोध करवाना आम बात हो गई है, वहीं तथाकथित शोध-निर्देशकों को खुद ही छंदों का ज्ञान नहीं है। ऐसे ही लोगों ने कुण्डलिया छंद को 'कुंडली' बना दिया है। कलमकारों का दायित्व है कि शोध के स्तर को बनाये रखने के लिए प्रयास करें।

भारतमित्र परिवार द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कारों की घोषणा कर दी गई है। इस बार का कथा पुरस्कार चण्डीगढ़ की कथाकार श्रीमती मनजीत शर्मा मीरा को दिया जाएगा। विस्तृत जानकारी के लिए पृष्ठ 12 देखें।

देश के हालात दिन-दिन खराब होते जा रहे हैं। उत्तराखंड त्रासदी के बाद प्रशासन की लापहरवाही और लोगों की संवेदनहीनता को देखते हुए यही कहा जा सकता है-

गये ज़माने त्याग के, शेष रह गया भोग।
लाशों को भी लूटते, हैं कलियुग के लोग।।

- रघुविन्द्र यादव

ग़ज़ल/नज़्म/गीतिका

राजेन्द्र नाथ 'रहबर'

दामने-सद-चाक को इक बार सी लेता हूँ मैं
तुम अगर कहते हो तो कुछ रोज़ जी लेता हूँ मैं

बे-सबब पीना मिरी आदात में शामिल नहीं
मस्त आँखों का इशारा हो तो पी लेता हूँ मैं

गेसूओं का हो घना साया कि शिद्दत धूप की
वो मुझे जिस रंग में रखता है जी लेता हूँ मैं

आते-आते आ गये अंदाज़ जीने के मुझे अब
तो 'रहबर' ख़ून के आँसू भी पी लेता हूँ मैं

-1085, सराए मोहल्ला, पठानकोट-145001

प्रो.रमेश सिद्धार्थ

दिल के अँधियारों में वो ख्वाबों का मंजर डूबा
गम के सैलाब में अश्कों का समंदर डूबा

एक एक करके बुझे सारे उम्मीदों के चिराग
इतनी मायूसी की अरमानों का खंडर डूबा

यार ने वार किया पीठ के पीछे से जब
शर्म से लाल हो गद्दार का खंजर डूबा

हमसे मत पूछो कि है जाम ये कितना गहरा
मय के प्याले के भंवर में तो सिकंदर डूबा

देख कुदरत के हसीं, दिलनशीं नज्जारों को
एक रूहानी-सी मस्ती में कलंदर डूबा

चीखें बच्ची कि कँपाती रहीं हर जर्रे को
बस्तियां मौन थीं पर शोक में अम्बर डूबा

डूब जाऊँगा तेरी मदभरी आँखों में सनम
जैसे पीकर के गरल ध्यान में शंकर डूबा

-110 सेक्टर-1, रेवाड़ी

शम्मी-शम्स-वारसी

जिन ज़हनों में दर्द का दरिया, शोले हैं शिरयानों में
उनकी किताबें ढूँढ़ो जाकर, रद्दी की दूकानों में

तितली बैठी सोच रही है फूल चमन की रौनक हैं
फिर क्यों सजाते इन्साँ आख़िर गुलदस्ते गुलदानों में

अपने अलाव दूर जलाओ, चिंगारी मत उड़ने दो
शहर के लोग लगे हैं रहने बारूदी चट्टानों में

आज है हमको सख़्त ज़रूरत इक ऐसे ही माली की
जो उल्फ़त के फूल खिलाये पत्थर दिल इन्सानों में

ज़ुल्म के जँगल में मिलते हैं कुछ क़ैदी बच्चे, जैसे
ज़ंज़ीरों में जकड़े ढाँचे मिलते हैं तहखानों में

एक उजाला जलकर बख़्शे, एक बुझाता दीपक को
फ़र्क़ है कितना इन दोनों में, जुगनू में, परवानों में

कितनी चितायें जलती होंगी दिल में उनके सोचो तो
'शम्स' जिन्होंने प्यार भरे ख़त फेंके आतिशदानों में

-छोटी मस्जिद के पास, आबूरोड़
8290180176

'बाबूजी का भारतमित्र' पत्रिका में विज्ञापन देकर साहित्यिक यज्ञ में योगदान दें।

विज्ञापन दरें निम्नांकित हैं:-

आवरण अंतिम पृष्ठ	-11000/-
आवरण पृष्ठ दो	-9000/-
आवरण पृष्ठ तीन	-7500/-
अंदर श्वेत श्याम पूरा पृष्ठ	-6000/-

आचार्य भगवत दुबे

जो, सदय होते नहीं
कवि हृदय होते नहीं
भाग्य के पुरुषार्थ बिन
अभ्युदय होते नहीं
धैर्य रखिये, एक से
सब समय होते नहीं
ज्ञान आ जाये अगर
मृत्यु-भय होते नहीं
क्यों नये निर्माण हों
यदि प्रलय होते नहीं
शांति, सुख, संतोष के
रत्न क्रय होते नहीं
धर्म के, आचार्य जी
पुण्य क्षय होते नहीं

-पिसनहारी मढ़िया के पास,
जबलपुर।

महेन्द्र मिहोनवी

इस हुकूमत में सबकी भलाई कहें
साफ़ ज़ाहिर ज़हर को दवाई कहें
जब अमावस की मानिन्द है ज़िन्दगी
क्या ग़ज़ल चाँदनी मे नहाई कहें
तब समझना कि ये भारी असगुन हुआ
जब ग़रीबों को वो अपना भाई कहें
अस्पतालों से साबुत निकल आये हैं
ये बड़े बेशरम हैं बधाई कहें
आप कहते हैं देवी जिसे मंच पर
घर के भीतर उसी को लुगाई कहें
इतना ख़ामोश रहना भी अच्छा नहीं
कुछ तो अपनी कुछ पराई कहें

-सरकारी अस्पताल के पास मिहोना
(भिण्ड) 09893946985

विज्ञान व्रत

तुमने जो पथराव जिए
हमने उनके घाव जिए
बचपन का दोहराव जिए
हम काग़ज़ की नाव जिए
वो हमसे अलगाव जिए
यानी एक अलाव जिए
सुलझाने को एक तनाव
हमने कई तनाव जिए
जिसको मंज़िल पाना है
वो क्या ख़ाक पड़ाव जिए

-एन-138, सेक्टर-25,
नोएडा

मो.क़ासिम खॉन 'तालिब'

इधर आँधी, उधर तूफाँ, खड़े हैं साथ चलने को
जमाना किस कदर बेताब है करवट बदलने को
बनो दरिया सिफत यारो, बढ़ो आगे, बढ़ो आगे
नहीं देता, कोई रस्ता, यहाँ आगे निकलने को
बचाना है, अगर जाँ तो, चलो कुछ वक़्त से आगे
खड़ी है भीड़, पैरों में, तुम्हें अपने कुचलने को
शराफत और उल्फ़त का कभी मत छोड़ना दामन
कि ये परबत, ग़मों के एक दिन तो हैं पिघलने को
गनीमत है, इसी ठोकर से ले ले तू अगर इबरत
मिलेगा फिर, नहीं मौक़ा, तुझे नादां संभलने को
बहू को जो जलाए, हो बहन-बेटी पे अफसुर्दा
किसी क़ीमत न उस पर से अज़ाबे-कब्र टलने को
करो औमाल कुछ ऐसे, कहीं ऐसा न हो 'तालिब'
तुम्हारे पास रह जाये वहाँ बस हाथ मलने को

-14, अमीर कम्पाउण्ड बीएनपी रोड़, देवास।

ज्ञानेन्द्र 'साज'

प्यार को हम प्यार जब समझे
ज़िंदगी का सार जब समझे
उड़ गया विश्वास हाथों हाथ
प्यार का व्यापार जब समझे
वह हमारा ही नहीं निकला
उसपे हम अधिकार जब समझे
हो गया अपमान अपना तब
ग़ैर का सत्कार जब समझे
ख़ुशबुएँ हमको मिली हैं 'साज'
प्यार का आधार जब समझे

-17/212, जयगंज, अलीगढ़

उसूल

फ़र्क़ है तुझ में, मुझ में बस इतना,
तू ने अपने उसूल की ख़ातिर,
सैंकड़ों दोस्त कर दिए क़ुर्बां,
और मैं! एक दोस्त की ख़ातिर,
सौ उसूलों को तोड़ देता हूँ।

-राजेन्द्र नाथ 'रहबर'
1085, सराय मोहल्ला, पठानकोट

सुरेश मक्कड़ 'साहिल'

मुफ़्त में कुछ भी दे व्यापारी, बहुत कठिन है
घोड़ा करे घास से यारी, बहुत कठिन है
सज़दा करने वालों की बस्ती में, प्यारे !
ढूँढ़ रहे हो तुम ख़ुद्दारी, बहुत कठिन है
चपरासी तो समझ गया है, मेरी समस्या
समझ सकेगा क्या अधिकारी, बहुत कठिन है
रिश्वत लेकर फँसा जो यारो! दे कर छूटा
रुक पाएगी ये बीमारी, बहुत कठिन है
सय्यादों के गठबन्धन ने जाल बिछाया
पंछी समझ सकें मक्कारी, बहुत कठिन है
एक व्यथा जो हो मन की तो कह दूँ तुमसे
समझाना पीड़ाएँ सारी, बहुत कठिन है
जीना भी आसान नहीं दुनिया में लेकिन
मरने की करना तैयारी, बहुत कठिन है
नंगे पाँव चले हो 'साहिल' सँभल के चलना
राह उसूलों की ये तुम्हारी बहुत कठिन है ।

-नगरपालिका के सामने, महेन्द्रगढ
9416418363

अनुराग मिश्र ग़ैर

शहर से जब गाँव वो आ जाएगा
देखना फिर आदमी हो जाएगा
जब अंधेरे में करेगी माँ दुआ
हर तरफ इक नूर-सा छा जाएगा
कल किया है पत्थरों ने फैसला
बोलना अब लाज़मी हो जाएगा
रातभर माँ को रही उम्मीद ये
भूखा बच्चा नींद में सो जाएगा
चाँद को धरती पे मत लाना कभी
वह हमारी भीड़ में खो जाएगा
उससे मेरा ज़िक्र मत करना 'ग़ैर'
वह पुरानी याद में खो जाएगा

-10-स्वप्नलोक कॉलोनी
कमता, चिनहट, लखनऊ

दिनेश रस्तोगी

कार्यालय रोज अब भाता नहीं
सूखे वेतन में मज़ा आता नहीं
नेतागिरी चल पड़ी है हर कहीं
बिना पौए के कोई आता नहीं
बीवी और बच्चे मिलाकर सात हैं
बेरहम कोई तरस खाता नहीं
सेटिंग में रोड़ा पड़ा कोई जरूर
ऐसे कोई फाइल लटकाता नहीं
फीस डोनेशन मिलाकर तीन लाख
इसलिए पढ़ने अब वो जाता नहीं

- 8-बी, अभिरूप
साउथ सिटी, शाहजहांपुर -242226
09450414473

अंसार क़ंबरी

धूप का जंगल, नंगे पावों, इक बंजारा करता क्या
रेत के दरिया, रेत के झरने, प्यास का मारा करता क्या
बादल-बादल आग लगी थी, छाया तरसे छाया को
पत्ता-पत्ता सूख चुका था, पेड़ बेचारा करता क्या
सब उसके आँगन में अपनी, राम कहानी कहते थे
बोल नहीं सकता था कुछ भी, घर-चौबारा करता क्या
तुमने चाहे चाँद-सितारे, हमको मोती लाने थे
हम दोनों की राह अलग थी, साथ तुम्हारा करता क्या
ये है तेरी, और न मेरी, दुनिया आनी-जानी है
तेरा-मेरा, इसका-उसका, फिर बँटवारा करता क्या
टूट गये जब बंधन सारे और किनारे छूट गये
बीच भँवर में मैंने उसका, नाम पुकारा करता क्या

-ज़फर मंज़िल, 11/116-ग्वालटोली, कानपुर

डॉ.सत्यवीर मानव

जो सदा करते रहे तक़रार की बातें
कर रहे हैं हम उन्हीं से प्यार की बातें

बात अपनी है, हृदय की बात उनकी भी
फिर तुम्हें कैसे बतायें यार की बातें

दर्द ये दिल का अभी कुछ और बढ़ने दो
मत करो हमसे अभी उपचार की बातें

जीत तो अच्छी सभी को मीत लगती है
एक हम हैं कर रहे जो हार की बातें

हाथ अपने हैं नहीं हारे अभी इतने
मत करो हम से अभी पतवार की बातें

ज़हर तो आखिर यहाँ पीना पड़ेगा ही
मत करो वरना यहाँ पर सार की बातें

जो कभी तैरे नहीं उल्टी दिशाओं में
क्या उन्हें मालूम होंगी धार की बातें

ऊपर से पानी तले से आग देते क्यों
तुम न समझोगे कभी सरकार की बातें

पढ़ न पाया हूँ अभी तक मैं स्वयं को ही
मत करो मुझसे अभी अख़बार की बातें

लीक से हटकर चले हो तो सुनोगे ही
रीत है ऐसी सुनो संसार की बातें

जो सदा बोते रहे थे सूल राहों में
कर रहे हैं अब वही उपहार की बातें

ये ग़ज़ल हैं कह रही हैं हाल 'मानव' का
तुम जिन्हें बतला रहे बेकार की बातें

-वार्ड नम्बर-1,
मंडी अटेली (हरि.)
9416238131

रमेश जोशी

चट्टानों से छन कर निकले
तो जल, गंगा बनकर निकले

जो थोड़ा सर ख़म कर निकले
वे दो अंगुल बढ़कर निकले

तलवारें तिरसूल गलें गर
तो कोई हल ढलकर निकले

कर्मों पर विश्वास नहीं था
सो ज्यादा बन-ठन कर निकले

जो जितने ज्यादा ओछे थे
वे उतना ही तनकर निकले

वे माथे का तिलक बन गये
जो मिट्टी में गल कर निकले

-संपादक, विश्वा
शर्मा ओर्थोपेडिक सेंटर,
देवीपुरा, सीकर-332001

डॉ.लोक सेतिया

मेरे दुश्मन मुझे जीने की दुआ न दे
मौत दे मुझको मगर ऐसी सज़ा न दे

उम्र भर चलता रहा हूँ शोलों पे मैं
न बुझा इनको, मगर अब तू हवा न दे

जो सरे आम बिके नीलाम हो कभी
सोने चाँदी से तुले ऐसी वफ़ा न दे

आ न पाऊँगा यूँ तो तिरे करीब मैं
मुझको तू इतनी बुलंदी से सदा न दे

दामन अपना तू काँटों से बचा के चल
और फूलों को कोई शिकवा गिला न दे

किस तरह तुझ को सुनाऊँ दास्ताने ग़म
डरता हूँ मैं ये कहीं तुझको रुला न दे

ज़िंदगी हमसे रहेगी तब तलक खफा
जब तलक मौत हमें आकर सुला न दे

-सेतिया अस्पताल, मॉडल टाउन,
फतेहाबाद

विशेषांक सूचना

बाबूजी का भारतमित्र का मार्च-सितंबर, 2014 अंक कुण्डलिया छंद विशेषांक होगा। सभी रचनाकारों से अनुरोध है कि अपने 20-20 मानक कुण्डलिया छंद 31 जनवरी, 2014 तक संपादकीय कार्यालय को भिजवा दें। निम्न मानक पूरे करने वाले छंद ही प्रकाशित होंगे।

मानक कुण्डलिया में दोहा के प्रथम एवं तृतीय चरण में जहाँ 13-13 मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरण में 11-11 मात्राएँ होती हैं, वहीं रोला में प्रथम व तृतीय चरण में 11-11 तथा दूसरे और चौथे चरण में 13-13 मात्राएँ होती हैं। दोहे में यति पदांत के अलावा 13वीं मात्रा पर होती है और रोला में 11वीं मात्रा पर। कुण्डलिया छंद में दोहे का चौथा चरण प्रथम रोला का प्रथम चरण होता है। छंद का प्रारम्भ जिस शब्द या शब्द समूह से किया जाता है, अंत भी उसी शब्द या शब्द समूह से होता है। कुण्डलिया के रोला वाले चरणों का अंत दो गुरु या एक गुरु दो लघु या दो लघु एक गुरु अथवा चार लघु मात्राओं से होना अनिवार्य है।

संपादक

दोहे

काँटों का उद्यान

जीवन है इन्सान का, काँटों का उद्यान।
रो-रो कर मूरख जिए, हँस-हँस कर विद्वान।।

तूफ़ानों के बीच जो, करते नैया पार।
मंजिल उनके चूमती, क़दमों को सौ बार।।

मुस्काकर सबसे मिलो, यही प्रीत की रीत।
दुश्मन भूले दुश्मनी, बढ़े मीत से प्रीत।।

बदल गये मौसम सभी, बदल गये हालात।
देखो अब होती नहीं, सावन में बरसात।।

झूठ, कपट के खेल में, जिसका है विश्वास।
फल वैसा वो भोगता, तू क्यों हुआ उदास।।

धोखा, डाका, छल, कपट, झगड़े और बवाल।
देखो मेरा देश है, कितना मालामाल।।

हिन्द अभी भी भोगता, कैसा ये संत्रास।
हिन्दी अब भी है बनी, अंग्रेजी की दास।।

फिरते भूखे भेड़िये, बिना शर्म औ' लाज।
बड़ी न छोटी बच्चियाँ, नहीं सुरक्षित आज।।

नून, तेल में खो गई, कहीं सुबह औ' शाम।
अरी जिन्दगी तू बता, तेरा पता मुकाम।।

संसद में हैं भर गये, डाकू औ' मक्कार।
कैसे ना फिर देश का, होगा बंटाधार।।

-महेन्द्र जैन
जैन सदन, 871 सेक्टर-13, हिसार

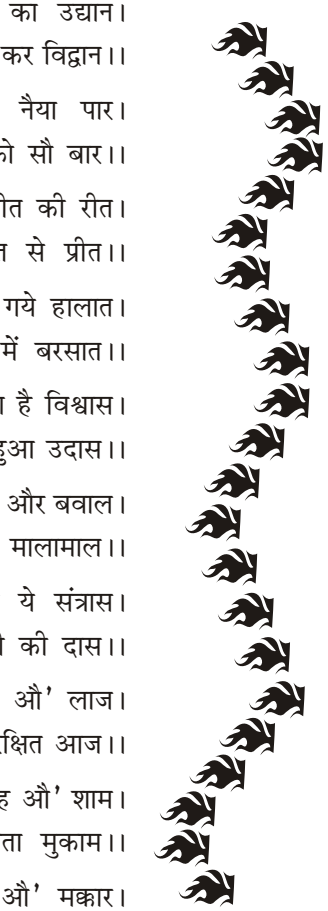

दोहा बना फ़कीर

गीत ग़ज़ल करते रहे, शब्दों की बरसात।
चंद लफ़्ज में कह गया, दोहा अपनी बात।।

दोहा दरबारी बना, दोहा बना फ़कीर।
नये दौर में कह रहा, दोहा जन की पीर।।

दोहे को रहिमन मिले, तुलसी और कबीर।
वृन्द, बिहारी, जायसी, पाकर हुआ अमीर।।

वामन सा दोहा कहे, लम्बी-चौड़ी बात।
सदा बेधता लक्ष्य को, दिन हो चाहे रात।।

टक्कर लेता ग़ज़ल से, पानी भरते गीत।
दोहे की जय बोलते, छंदमुक्त, नवगीत।।

सुखिया तो नादान है, करता व्यर्थ विलाप।
मंदिर में कब घुस सके, ख़ुद परमेश्वर आप।।

संकट में जब जान थी, मिला न कोई पास।
वैसे लाखों यार हैं, अपने खासमखास।।

अपनी भी थी आरजू, छूने की आकाश।
दिया नहीं पर भूख ने, उड़ने का अवकाश।।

करते हैं जो मंच से, नैतिकता की बात।
निर्लज होकर कर रहे, घोटाले दिन-रात।।

'साहित सेवी' हो गये, यार चार सौ बीस।
सम्मानों की माँगते, खुल्लम-खुल्ला फीस।।

दोनों पानीहीन हैं, मही और महिपाल।
मरा भूप की आँख का, भू के सूखे ताल।।

पाँव नहीं हैं झूठ के, भरता मगर कुलाँच।
रेंग रहा फुटपाथ पर, बेबस होकर साँच।।

बापू स्वामी पादरी, संत महंत इमाम।
सब के सब नंगे मिले, हमको बीच हमाम।।

-रघुविन्द्र यादव
'प्रकृति-भवन', नीरपुर, नारनौल

रिश्वत करे धमाल

उजड़े हुए जीवन में-आशाओं के दीप।
'दर्द' व्यर्थ ये हो गये, क्योंकर रखो समीप?

महँगाई उत्कोच के, निश-दिन चलते बाण।।
जीना कैसे 'दर्द' जब, साँसत में हों प्राण।।

यार सियासत मस्त है, रिश्वत करे धमाल।
'स्वतंत्रता' के बाद भी, क्योंकर है ये हाल।।

जनता मेरे देश की, खोले अब तो नैन।
राजनीति ये रोज ही, छीन रही है चैन।।

धीरे-धीरे हो गया, 'डॉलर' मालामाल।
'रुपया' अपने देश में, यार हुआ बदहाल।।

राजनीति के 'दर्द' हैं, अज़ब-गज़ब ही रूप।
कभी लगे है छाँव-सी, कभी लगे है धूप।।

'छली' गिरगिटी रूप में, बड़ी सियासत दक्ष।
घायल हुआ जो पहुँचा, इसके 'दर्द' समक्ष।।

वो ही पक्ष-विपक्ष है, वो ही है कानून।
उसका कुछ होना नहीं, लाखों करदे खून।।

होंठों की है मेढ़ पर, फीकी मृत-मुस्कान।
ऐसे ही तो 'जी' रहा, आज विवश इन्सान।।

रहे 'रगों' में दौड़ता, भरे जिस्म में जान।
'भाव' जगाओ यार वो, जिसमें हो तूफान।।

उड़ी कल्पना, भावना, 'दर्द' उड़े ज्यों चील।
थके न फिर भी यार वो, उड़ कर मीलों मील।।

'दर्द' धरा है देश की, सुन्दर स्वर्ग स्वरूप।
छाँव यहाँ की सुनहरी, चाँदी जैसी धूप।।

-ख़ान रशीद 'दर्द'
होटल साँवरिया के सामने,
आलम्पिक तिराहे के पास,
बड़वानी (मध्य प्रदेश)

जीना इक संग्राम

जीवन इक मैदान है, जीना इक संग्राम।
इस रण की ये रीत है, कभी न युद्ध विराम।।

वृक्ष कटा तो बेल यूँ, कह के करे विलाप।
निर्भर रहने से कभी, मिलता है संताप।।

पत्थर को तो काट कर, बना लिये भगवान।
बिखरे टुकड़ों का यहाँ, कौन करे उत्थान।।

चले हवा जिस ओर भी, पत्ते उड़ते संग।
हलके हैं हलके सदा, बदलें अपना रंग।।

फूलों की दुशमन बनी, उनकी अपनी गंध।
पाते ही कुछ तोड़ लें, चूसे कुछ मकरंद।।

गरम तवे पर वाष्प बन, उड़ जाता है नीर।
जब जग ऐसा हो गया, कौन सुनेगा पीर।।

हरियाली की ओढ़नी, पावस का उपहार।
वसुधा बोले धन्य हूँ, पाकर ऐसा प्यार।।

धरती का दुख देख कर, बादल हुए अधीर।
तड़प-तड़प कर रो पड़े, वाह धरा की पीर।

-अनिल श्रीवास्तव 'जाहिद'
रायपुर (छ.ग.)-09752877805

कवि-लेखकों से निवेदन

- मार्च अंक के लिए रचनाएँ 31 जनवरी तथा सितंबर अंक के लिए 31 जुलाई तक मिल जाएँ।
- केवल मौलिक व अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। मौलिकता का प्रमाण-पत्र अनिवार्य है।
- रचनाएँ टंकित या हस्त-लिखित हों। फोटो प्रति न भेजें, स्वीकार नहीं की जा सकेंगी।
- रचना प्रकाशन की एकमात्र शर्त रचना का श्रेष्ठ होना ही है। इस संबंध में पत्र-व्यवहार न करें।
- मानदेय की व्यवस्था नहीं है, केवल संबंधित अंक की प्रति भेजी जाएगी।

फूहड़ हास्य-फुहार

तुच्छ लतीफ़े-चुटकुले, फूहड़ हास्य-फुहार।
कवि-सम्मेलन में दिखी, कचरे की भरमार।।

मानस की चौपाइयाँ, जैसे माँ का प्यार।
जीवन का संबल कहो, या जीवन-आधार।।

मुन्नी के मुख से झरे, अमृत-वचन ललाम।
मुन्नी! तेरा शुक्रिया, मुन्नी तुझे सलाम।।

देह-अजन्ता में सदा, खोजा किये प्रयाग।
अभिशापित करता रहा, विषययुक्त अनुराग।।

मन-मन्मथ मथता रहा, मंथन-घट मनहार।
मतिविहीन करता रहा, मधुकर-सम व्यवहार।।

जीवन-भर डसता रहा, चतुष्फणी सारंग।
गुरु के प्रबल प्रभाव से, गरल चढ़ा ना अंग।।

जीवन ज्योतिर्मय हुआ, तम मिट गया समूल।
अनुकूलन करने लगीं, धाराएँ प्रतिकूल।।

नाशवान संसार यह, नश्वर है यह देह।
नित्य अनश्वर आत्मा, का अस्थाई गेह।।

रात अमा की कट गयी, उदित हुआ दिनमान।
मन-विहंग गाने लगा, नव उमंगमय गान।।

दंगे में मारे गये, हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख ।
केसरिया बोला-'सखे! केवल हिन्दू लिक्ख'।।

ये उनसे कुछ कम नहीं, वो इनसे इक्कीस।
हमने करके देख ली, दंगों की तफ़्तीश।।

ना वो मस्जिद का हुआ, ना ये मंदिर-भक्त।
दोनों को बस चाहिए, इक-दूजे का रक्त।।

दंगों की पटु पटकथा, लिखता है क्यों-कौन?
है सबको मालूम पर, सब साधे हैं मौन।।

-जितेन्द्र 'जौहर'
आई आर-13/6, रेणुसागर, सोनभद्र-231218.
09450320472

कंचन है बेहाल

इस अलबेले वक़्त में, पहन-पहनकर ताज।
बेशकीमती हो गये, कई मुखौटेबाज।।

फुसलाया जब जीभ ने, बहक गया तब पेट।
जो अमूल्य थे बिक गये, औने-पौने रेट।।

विज्ञापन-गुरु खिल उठे, ऐसा हुआ कमाल।
पीतल चमकी हाट में, कंचन है बेहाल।।

नैतिकता किस कोर्ट में, जाकर करे अपील।
सभी मंच दिखला रहे, दृश्यावलि अश्लील।।

सोने की चिड़िया कहे, होकर बहुत उदास।
सब सोना पीतल हुआ, जो था मेरे पास।।

संसद की गरिमा गयी, लोकतंत्र का मान।
हरी-हरी जब पत्तियाँ, भरने लगीं उड़ान।।

लोकतंत्र के वृक्ष पर, वंशवाद की बेल।
गुमसुम दिल्ली देखती, राजनीति के खेल।।

समय कहीं सुन ले अगर, मजलूमों की चीख।
तब अपने अस्तित्व की, संसद माँगे भीख।।

कव्वों के दरबार में, गूँगी हर तकरीर।
'अंजुमजी' थक-हारकर, मगहर चले कबीर।

राजाजी के फैसले, लोकतंत्र का नाम।
इतने नंगे देखकर, हतप्रभ हुआ हमाम।।

जर्जर हालत देश की, गाल बजाता तंत्र।
ऊपर-ऊपर रोशनी, अंदर है षड़यंत्र।।

आदर्शों को किस तरह, मिले आज उत्कर्ष।
राजनीति में है प्रमुख, कुर्सी का संघर्ष।।

-अशोक 'अंजुम'
संपादक, अभिनव प्रयास
गली-2, चन्द्रविहार कॉलोनी,
नंगला डालचंद, क्वारसी बाईपास, अलीगढ़।
09258779744

बिल्ली को बादाम

सीटी की आवाज पर, उड़े सभी के होश।
साँप छछूंदर मिल गये, पहरे पर मदहोश।।

निकला अफसर जाँच को, खाली दोनों हाथ।
कहीं जलेगा आज फिर, अपना मंजूनाथ।।

बिकी चौकसी गाँव की, चौकी का ईमान।
दरबानों का अब कहो, कौन बने दरबान।।

बिगुल बजाकर संतरी, भागा मीलों-मील।
जाग गए सब चोर थे, सोये पड़े वकील।।

हार बिलोटी जब गई, खुली मैराथन रेस।
मृगछोनों पर लगा दिये, शील-भंग के केस।।

इंजन पलटा रेल का, सिग्नल थे बेकार।
जाँच हुई पकड़े गये, क्लीनर खिदमतगार।।

रंगे हाथ पकड़ा गया, मुखिया जी का यार।
सजा मिली कुतवाल को, भोगे चौकीदार।।

दीनों से मिलने गये, अपने दीनानाथ।
अख़बारी बातें करीं, मिला-मिला कर हाथ।।

हुआ गरीब के साथ है, उनका हाथ महान।
कब पंजा बन जाएगा, जाने कौन अजान।।

बहस गरीबी पर चली, था गरीब निर्वाक।
ये गरीब का उड़ा रहे, कितना बड़ा मजाक।।

परिभाषित करने चले, आम आदमी कौन।
भगदड़ में कुचला गया, पड़ा निहत्था मौन।।

चाकी आटा पीसती, होकर भाव-विभोर।
रोता अन्न गरीब-सा, चाकी करती शोर।।

कुत्तों को रोटी नरम, बिल्ली को बादाम।
देते उतरन दीन को, श्री खैराती राम।।

-डॉ.मनोहर अभय
नवी मुंबई
09773141385

साँप रहा क्यों पाल

इनमें कितना सार है, कितना इनमें काँच।
चला हथौड़ा, देख लूँ, ला ये पुतले जाँच।।

ये तो तेरे ही लिए, बन जायेंगे काल।
तू अपनी आस्तीन में, साँप रहा क्यों पाल?

तू भी अपने हाथ में, रख नंगी तलवार।
ऐसे मानेगा नहीं, यह जालिम संसार।।

जन-मन की ही दूरियाँ, सका न तू पहचान।
क्या पायेगा भूमि से, नभ की दूरी जान?

थी ऐसी क्या बेबसी? बोल, अरे इन्सान!
क्यों ज़मीर गिरवी रखा? क्यों बेचा ईमान?

तू आँखों के कोष से, मोती यों न बिखेर।
खो जायेंगे धूल में, हो जायेंगे ढेर।।

रख ले निज बहुमूल्य दुख, मन में छिपा सयत्न।
लोग लुटाते हैं नहीं, यों ही अपने रत्न।।

ठोक-पीट इसको तपा-झुका, न धीरज त्याग।
बन्धु !भाग्य यदि लौह, तो कर्म प्रज्वलित आग।।

मैं सदैव यह चाहता, खिला रहे उद्यान।
सिंचन मे करना पड़े, भले रक्त का दान।।

मन से बैरागी रहे, तन से राजकुमार।
बन विदेह हमने किये, दुनिया के व्यवहार।।

दबी अन्तरात्मा जहाँ, जहाँ सत्य बदनाम।
जाते ऐसे देश में, कभी न अपने राम।।

बंधक हम निज व्यसन के, हैं स्वभाव के दास।
कारावासी अहम के, कहाँ मुक्ति-मधुमास।।

खूब दिखा, मेरे नयन, भरा न भ्रम का रेत।
दर्पण से मैं क्यों डरूँ? क्या मैं कोई प्रेत?

-डॉ.अनन्तराम मिश्र 'अनन्त'
गोला गोकर्णनाथ, खीरी

कुण्डलिया छंद

कितना श्रेष्ठ चरित्र है, कितनी सुंदर चाल।
इतना उज्ज्वल चेहरा, उस पर कपट बवाल।।
उस पर कपट बवाल, रह गये सब भौचक्के।
फिर भी जय-जयकार, करें उद्दण्ड उचक्के।
विषद आचरण आज, गिराया देखो जितना।
उसे देखकर कौन, समर्थन देगा कितना?

2

आज प्याज को बेचते, उन्हें न आती लाज।
जिनके कारण देखिए, सड़ता रहा अनाज।।
सड़ता रहा अनाज, व्यवस्था नहीं सुधारी।
इतना नैतिक ह्रास, गई इनकी मति मारी।
बेहद दुखी समाज, न जाने राज काज को।
करते क्रूर प्रचार, बेचकर आज प्याज को।।

3

भाई ही करने लगे, बहनों का जब खून।
बना दिया सरकार ने, रक्षा का कानून।।
रक्षा का कानून, प्रगति का नया सहारा।
बहनों को सम्मान, बढ़ाता न्याय हमारा।
लोकतंत्र ने आज, सचेतन बुद्धि जगाई ।
समता परक समाज, करें मत अंतर भाई।।

4

मुगलों के साम्राज्य में, बनते रहे वज़ीर।
फिर अंग्रेजों की वही, बने खास तस्वीर।।
बने खास तस्वीर, प्रशासन छली संभाले।
गाँव गरीब किसान, इन्हीं के रहे हवाले।
मछली मुर्ग शराब, उड़ाये सँग चुगलों के।
आज देश के भक्त, हितैषी तब मुगलों के।।

-तुकाराम वर्मा
ई 11/2 अलीगंज हाउसिंग स्कीम
सेक्टर-बी, लखनऊ

पुस्तक पुरस्कारों की घोषणा

बाबूजी का भारतमित्र परिवार द्वारा दिये जाने वाले वर्ष 2012 के पुस्तक पुरस्कारों के विजेता-

स्व.दमयन्ती यादव स्मृति पुरस्कार-(राशि 1100 रुपये)

सुश्री हरकीरत हीर, गुवहाटी को उनके कविता संग्रह 'दर्द की महक' के लिए।

प्रायोजक-स्व.नम्बरदार जोखीराम स्मृति संस्थान, नीरपुर, नारनौल।

स्व.जुगरी देवी स्मृति कथा पुरस्कार-(राशि 2100 रुपये)

श्रीमती मनजीत शर्मा मीरा, चण्डीगढ़ को उनके कहानी संग्रह 'आत्महत्या के क्षणों में' के लिए।

प्रायोजक-श्री रत्नकुमार सांभरिया-कथाकार, जयपुर।

स्व.नंदकौर यादव स्मृति पुरस्कार-(राशि 1100 रुपये)

श्री रमेश जोशी, संपादक, विश्वा-हिन्दी त्रैमासिक (निवासी सीकर) को उनके गीतिका संग्रह 'बेगाने मौसम' के लिए।

प्रायोजक-स्व.नम्बरदार चन्द्रभान यादव स्मृति समिति, निहालपुरा।

सभी विजेताओं को हार्दिक बधाई।

निष्पक्ष निर्णय के लिए निर्णायक मंडल को साधुवाद।

पुरस्कार में नकद राशि के साथ शॉल, स्मृति चिह्न और प्रशस्ति-पत्र भव्य समारोह में प्रदान किए जाएँगे।

नोट-

लोक साहित्य और संस्कृति वर्ग में कोई स्तरीय कृति प्राप्त न होने के कारण इस वर्ष लोक-साहित्य पुरस्कार प्रदान नहीं किया जा रहा।

आगामी वर्ष के पुरस्कारों के लिए वर्ष 2012 व 2013 में प्रकाशित पुस्तक की दो-दो प्रतियाँ और जीवन परिचय पत्रिका के संपादकीय कार्यालय को भेज सकते हैं। विस्तृत जानकारी के लिए मार्च, 2014 अंक पढ़ना न भूलें।

-संपादक
बाबूजी का भारतमित्र
प्रकृति-भवन, नीरपुर, नारनौल
(हरियाणा)-123001

कुण्डलिया छंद

शठता कब पहचानती, विनय, मान-मनुहार।
उसको सुख देती रही, परपीड़ा हर बार।।
परपीड़ा हर बार, मोद उसके मन भरती,
परेशान बहु भाँति, साधुता को वह करती,
'ठकुरेला' कविराय, जगत सदियों से रटता।
शठ जैसा व्यवहार, सुधारे शठ की शठता।।

2

जल में रहकर मगर से, जो भी ठाने वैर।
उस अबोध की साथियो, रहे किस तरह खैर।।
रहे किस तरह खैर, बिछाये पथ में काँटे,
रहे समस्याग्रस्त, और दुख खुद को बाँटे,
'ठकुरेला' कविराय, बने बिगड़े सब पल में।
रखो मगर से प्रीति, अगर रहना है जल में।।

3

होता है मुश्किल वही, जिसे कठिन लें मान।
अगर करें अभ्यास तो, सब कुछ है आसान।।
सब कुछ है आसान, बहे पत्थर से पानी,
कोशिश करता मूढ़, और बन जाता ज्ञानी,
'ठकुरेला' कविराय, सहज पढ़ जाता तोता।
कुछ भी नहीं अगम्य, पहुँच में सब कुछ होता।।

4

धीरे धीरे समय ही, भर देता है घाव।
मंजिल पर जा पहुँचती, डगमग करती नाव।।
डगमग करती नाव, अंततः मिले किनारा,
मिटती मन की पीर, टूटती तम की कारा,
'ठकुरेला' कविराय, खुशी के बजें मजीरे।
धीरज रखिये मीत, मिले सब धीरे धीरे।।

-त्रिलोक सिंह 'ठकुरेला'
बँगला संख्या-99,
रेलवे चिकित्सालय के सामने, आबू रोड
मो-09460714267

जाति-धर्म से भिन्न सब, भाषा, भेष अनेक।
मानवता की परिधि में, सारी दुनिया एक।।
सारी दुनिया एक, एक है सब की हाला।
पीते देखे संत, प्रेम का छककर प्याला।
खुश रहता भगवान, सुना सत प्रेम-कर्म से।
सबसे करिये प्यार, नहीं इस जाति-धर्म से।।

2

मातृदिवस पर एक दिन, खबर छपी अखबार।
जिस माँ ने पाला कुँवर, उसने दीनी मार।।
उसने दीनी मार, वधु की बातें रूखी।
माँ ने माँगा भोज, रही दो दिन से भूखी।
भोजन देना दूर, मार दी लाठी कसकर।
रहना खुश अज्ञान, मरी कह मातृदिवस पर।।

-शिवकुमार दीपक
सहपऊ, हाथरस

सच के पथ पर सब चलें, कहना है आसान।
जीवन के संग्राम में, डोल रहा ईमान।।
डोल रहा ईमान, मिले छुटकारा कैसे,
जाके दुश्मन साथ, काम अरु माया जैसे,
'राज' कहे ये बात, रहो तुम इनसे बच के।
काम वासना छोड़, गहो सब मार्ग सच के।।

2

घोटालों की बाढ़ ने, जीना किया हराम।
बढ़ते भ्रष्टाचार में, नहीं मिले आराम।।
नहीं मिले आराम, बने ना जुगत बनाये,
अमन चैन की राह, कभी ना जिनको भाये,
राज कहे ये बात, करो मुँह इनके काले।
वरना देंगे मार, हमें बढ़ते घोटाले।।

-राजकुमार 'राज'
तालसपुर कलाँ, अलीगढ़

गीत-नवगीत/कविताएँ

माँ!

माँ! मुझे शिकवा है तुझसे क्यों बनी अबला रही?
सत्य है यह खा-कमाती, सदा से सबला रही।

खुरदरे हाथों से टिक्कड़ नोन के संग जब दिए।
लिए चटखारे सभी ने, साथ मिलकर खा लिए।

तूने खाया या न खाया कौन कब था पूछता?
तुझमें भी इंसान है यह कौन-कैसे बूझता?

यंत्र सी चुपचाप थी क्यों आँख क्यों सजला रही?
माँ! मुझे शिकवा है तुझसे क्यों बनी अबला रही?

काँच की चूड़ी न खनकी, साँस की सरगम रुकी।
भाल पर बेंदी लगाई, हुलस कर किस्मत झुकी।

बाँट सपने हमें अपने नित नया आकाश दे।
परों में ताकत भरी श्रम-कोशिशें अहिवात दे।

शिव पिता की है शिवा तू शारदा-कमला रही?
माँ! मुझे शिकवा है तुझसे क्यों बनी अबला रही?

इंद्र सी हर दृष्टि को अब हम झुकाएँ साथ मिल।
ब्रह्म को शुचिता सिखायें पुरुष-स्त्री हाथ मिल।

राम को वनवास दे दें दु:शासन का सर झुके।
दीप्ति कुल की बने बेटी संग हित दीपक रुके।

सचल संग सचला रही तू अचल संग अचला रही।
माँ! मुझे शिकवा है तुझसे क्यों बनी अबला रही?

-संजीव सलिल
204, विजय अपार्टमेंट, जबलपुर

श्राप न दो

रहने दो तुम मौन मुझे, मुखरित होने का श्राप न दो।
विजड़ित होंठ खोल दूँगा तो, पीर पराई हो जाएगी।।

सिखा दिया है क्रूर समय ने
घूँट-घूँट कर पीड़ा पीना
जिसको सब कहते हैं मरना
उसको मैंने जाना जीना
अभिसारों का नाम न लो, पुलकित होने का श्राप न दो।
पथ से विलग डोल दूँगा तो, पीर पराई हो जाएगी।।

आँखों में आँजा विषाद को
मुस्कानों संग दुख को पाला
पग-पग पर संदेह मिले हैं
उनको विश्वासों में ढाला
रहने दो सच को सच प्रिय, कल्पित होने का श्राप न दो।
सपनों का अगर मोल दूँगा तो, पीर पराई हो जाएगी।।

करता नहीं है ये मन मेरा
खुशियों के द्वारे पर जाऊँ
क्षणिक सुखों के हेतु किसी के
आगे दोनों कर फैलाऊँ
किंचित उचित भी रहने दो, अनुचित होने का श्राप न दो।
हृद में आस घोल दूँगा तो, पीर पराई हो जाएगी।।

-डॉ. सतीश चन्द्र 'राज'
तितिक्षा, 10/33, घोरावल, सोनभद्र
9956635847

अपनी भाषा में

भाषा है अपनी भाषा में आओ मिल-जुल सब काम करें
हम मानसरोवर के वासी क्यों? हंस नाम बदनाम करें

शब्दों, वर्णों, छंदों की तो
यहाँ मिली अनन्त धरोहर
इसमें असीम प्रस्तुति क्षमता
रसवन्ती अनुपम स्वर है
अति सरल, सुबोध, हृदयग्राही, अभिनन्दन आठों याम करें
भाषा है अपनी भाषा में आओ मिल-जुल सब काम करें

नानक, कबीर, तुलसी, खुसरो
मीरा बाई की मुँह बोली
युग पुरूष निराला की थाती
माँ के ललाट की रंगोली
श्रद्धा पावन जय शंकर की आरती नमन अविराम करें
भाषा है अपनी भाषा में आओ मिल-जुल सब काम करें

संवर्धन-ध्येय चलें लेकर
इस यात्रा में सह-भागी हों
जयघोष विश्व में गुंजित हो
हिन्दी के प्रति अनुरागी हों
घर-घर में ऐसी अलख जगे जन-मन की भाषा आम करें
भाषा है अपनी भाषा में आओ मिल-जुल सब काम करें

किश्तों में कब तक देश बँटे
बँटने से इसको रोक सकें
सिरफिरे पड़ोसी कहते जो
उनको 'अचूक' हम टोक सकें
उँगली जिसकी उठती इस पर उँगली का काम तमाम करें
भाषा है अपनी भाषा में आओ मिल-जुल सब काम करें

-कृपा शंकर शर्मा 'अचूक'
38ए, विजय नगर, करतार पुरा, जयपुर

हिमालय बुला रहा है

सुनो कि गंगा पुकारती है, उठो हिमालय बुला रहा है

पुकार आयी, जवाब दो तुम
तमाम कर्ज़े, हिसाब दो तुम
लहू निचोड़ो, शबाब दो तुम
धधक उठी है विशाल सीमा, धुँआ गगन में समा रहा है

उठो, वतन के जवान जागो
परंपरागत गुमान जागो
महान हो तुम, महान जागो
झिंझोड़ता है स्वदेश तुमको, जगो कि कबसे जगा रहा है

उछाह में अब उछाल आये
गरम लहू में उबाल आये
फ़क़त वतन का ख़याल आये
उतारता है जवान मस्तक, लहू वतन पर चढ़ा रहा है

विशाल धरती, विशाल लोगो
कपाल पर हो गुलाल लोगो
करो वही फिर कमाल लोगो
यही समय है, कि मातृपय का, सपूत कर्जा चुका रहा है

मिले विजय पर विराम तुमको
सुनाम हो या अनाम तुमको
नमन शहीदो, सलाम तुमको
सलाम करता तुम्हें ज़माना, तिलक विजय का लगा रहा है

-चन्द्रसेन विराट
121, वैकुण्ठधाम कालोनी,
इन्दौर

जागो भारत वीर

जागो भारत वीर, वक्त ने फिर ललकारा है।
आतंकी साजिश ने घेरा, वतन हमारा है।।

तुम सोते सुख नींद, शुत्र ने घात लगाई है।
आतंकी हमलों की बस, हर ओर दुहाई है।।
नहीं सुरक्षित जान किसी की, सब घबराये हैं।
चारों ओर देखिए, खूनी बादल छाये हैं।।
जन्मजात जो शत्रु वही, साजिश रखवारा है।
आतंकी साजिश.....

रक्त विषैला हुआ देश का, सब गद्दार हुए।
लगता है रक्षक-शासक, सारे लाचार हुए।।
रक्षक कौन, कौन है भक्षक, अब पहचान नहीं।
राष्ट्रभक्ति का कहीं रहा, अब नाम-निशान नहीं।।
दौलत के लालच में, लो ईमान बिसारा है।
आतंकी साजिश.....

भूल गये बलिदान, देश कैसे आजाद हुआ।
सपना वीर शहीदों का, कैसे बरबाद हुआ।।
तड़प-तड़प कर मातृभूमि, व्याकुल हो रोती है।
घायल हुए जिगर के खूँ से, दामन धोती है।।
हाल मातृभूमि का कैसे, तुम्हें गवारा है।
आतंकी साजिश.....

जागो भगतसिंह फिर से, फिर से सुभाष जागो।
फैशन लोभ आशिकी आलस, धरा पुत्र त्यागो।।
उठो मिटा दो दुश्मन के, उन सभी ठिकानों को।
हिम्मत किसकी रोक सके, बढ़ते दीवानों को।।
'ताबिश' देकर लहू, वतन का रूप सँवारा है।
आतंकी साजिश.....

-आचार्य राकेश बाबू 'ताबिश'
द्वारका पुरी, कोटला रोड़, फीरोजाबाद

यादों के पंछी

भरते रहे उड़ान रात भर यादों के पंछी।
हरते रहे थकान रात भर यादों के पंछी।।

सुधि की विकल तरंगों को खुद दुख झकझोर रहे
ओझल विमल उमंगों को आँसू हिलकोर रहे
करवट बदले व्याकुल आशा बिस्तर पर लेटी
करते रहे पयान रात भर यादों के पंछी।

खोल रही है उत्कट इच्छा बचपन की झोली
सिसक-सिसक सिहरन सुलझाती उलझन की चोली
आँखों में है दिवा-स्वप्न उस हँसमुख सावन के
करते रहे बयान रात भर यादों के पंछी।

झरते झरनों की मचान पर ठहरे बीते पल
ढूँढ़ रहे कुछ तौर तरीका खोज रहे कुछ हल
लिपट क्षितिज से झाँक रहे हैं आने वाले कल
करते रहे लदान रात भर यादों के पंछी।

भूल गये पदचाप सुरभि के पगले मन भँवरे
बहक रहे हैं उपवन-उपवन सिर पर हाथ धरे
पुनर्नवा के पास झमाझम तितली ठहर गई
लिखते रहे रुझान रात भर यादों के पंछी।

-शिवानंद सिंह 'सहयोगी'
'शिवाभा', ए-233, गंगानगर, मेरठ

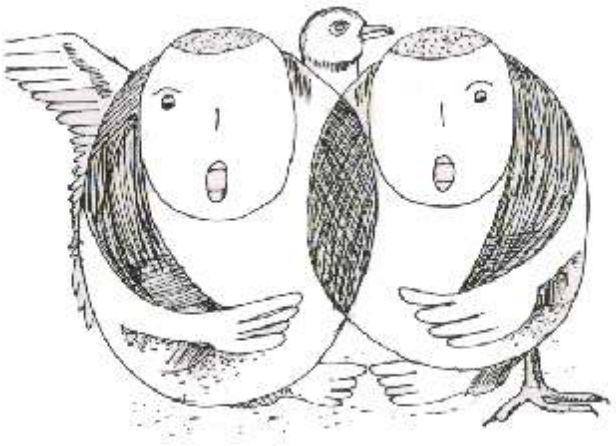

मेरी प्यास

नदिया-नदिया, सागर-सागर
पनघट-पनघट, गागर-गागर
मेरी प्यास भटकती दर-दर

भटकन की कैसी मजबूरी
भीतर है अपनी कस्तूरी
संगम-संगम, तीरथ-तीरथ
मंदिर-मंदिर, देव-देव घर
मेरी आस भटकती दर-दर

खोज रहा मन गंध सुहानी
युगों-युगों की यही कहानी
उपवन-उपवन, चंदन-चंदन
सावन-सावन, जलघर-जलघर
मेरी साँस भटकती दर-दर

यह कैसा अनजाना भ्रम है
धरा-गगन जैसा संगम है
संत-संत पर, पंथ-पंथ पर
मेरी लाश भटकती दर-दर

सूखे कण्ठ सुलगती आँखें
टूटा साहस, टूटी पाँखें
पर्वत-पर्वत, जंगल-जंगल
मृगजल-मृगजल, आँचल-आँचल
बन संत्रास भटकती दर-दर

कुंज गली-तन, मन-वृंदावन
लीला करता छिप मनमोहन
कर्म-कर्म पर, धर्म-धर्म पर
वर्ण-वर्ण हर आखर-आखर
बनकर प्यास भटकती दर-दर।

-डॉ.रामसनेही लाल शर्मा
86 तिलक नगर, बाईपास रोड़,
फीरोजाबाद

हिन्दी! भारत की शान

हिन्दी की महिमा गाता है सारा हिन्दुस्तान,
अंबर से भी ऊँची है हिन्दी भाषा की शान।
हिन्दी भाषा की यशगाथा
फैली है चहुँ ओर,
फिर क्यों ग़ैरों की भाषा की
थामी जाए डोर?
सदियों का इतिहास रहा है भाषा की पहचान।
हिन्दी में हो लेखन-पाठन
आज करो यह प्रण,
भाषा की नदिया कलकल
बहती जाए प्रतिक्षण,
विश्व-पटल पर हिन्दी का मिलकर गाएँ गुणगान।
हिन्दी भाषा सब भाषाओं
के माथे का ताज,
दुनिया में परचम फहराएँ
हम हिन्दी का आज,
हिन्दी के दम पर ही रोशन भारत माँ की आन।

-रजनी मोरवाल
अहमदाबाद
9824160612

समीक्षा-सूचना

समीक्षा हेतु पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजें। जिन पुस्तकों की एक ही प्रति प्राप्त होगी, उनका केवल परिचय ही प्रकाशित किया जाएगा।

कृपया समीक्षा न भेजें, समीक्षा हमारे पैनल द्वारा ही की जाएगी।

पत्रिकाओं की प्रति फरवरी व अगस्त में 25 तारीख तक अवश्य भिजवा दें, ताकि उनका परिचय प्रकाशित किया जा सके।

शिल्पकार सी आँखें

शिल्पकार सी आँखें हो तो
पत्थर में मुस्कान ढूँढ ले!
चिंतन के सागर में उतरें
मुश्किल और आसान ढूँढ लें!!

फूलों की चाहत में जो
काँटों से भयभीत नहीं
हार चुनौती बन जाए तो
दूर कभी कोई जीत नहीं!
पल-पल जीवन पथ पर चलता
सहज-सहज परिमान ढूँढ ले!!

लहूलुहान घावों पर जिसके
अरमानों का मरहम हो
सपनों में मंजिल की चाहत
उम्मीदों का दमखम हो!
दुनिया की इस भीड़ में खोया
अपनी एक पहचान ढूँढ ले!!

दुनिया के इस आँगन में
हर इंसान खिलाड़ी है
चंचल-चतुर-चालाक-निपुण
कोई फिरता निपट अनाड़ी है!
कोई करत-करत अभ्यास यहाँ
सफलता का वरदान ढूँढ़ ले!!

निस्सीम अभिलाषा में कोई
जीवन में विष घोल रहा
चंचल मन के वश में
अशांत भटकता डोल रहा!
कोई योग साधना के बल पर
कोलाहल में भी ध्यान ढूँढ ले!!

-राजेश प्रभाकर
उपाधीक्षक, जिला शिक्षा अधिकारी
कार्यालय, रेवाड़ी

वज़ू

धुले हाथ
सफ्फाक कपड़े
सौ-सौ सिज़दे
ऊँची नुमाज़
कुछ भी न देखा, न सुना उसने।

सुनता भी कैसे,
वज़ू तो किया ही कहाँ था तुमने
हाथ धोये थे
मन कहाँ धोया था तब
आ गए इबादत को
मन धुला हो तो,
धूल भरे हाथ भी,
जब उठते हैं उसकी ओर
दौड़कर चूम लेता है वह

उसे तो चाहिए
काम में जुटे हाथ
आगे बढ़ते लथपथ पाँव
पसीने से तर पेशानी
और
आदमीयत से सरोबार धुला मन

तब उसकी अनंत बाहें
गोद में समेट लेंगी तुम्हें
जाओ!
वज़ू करो मेरे भाई!

-यतीन्द्रनाथ 'राही'
ए-54 रजत विहार,
होशंगाबाद रोड़, भोपाल-26

आओ चलें

आओ चलें गाँव की ओर,
एक छोर से दूजे छोर।
समझें जाने इसकी काया,
औषध धन रंगीली माया।।

न जाने कितने भण्डार,
खड़े खोल सब मंगल द्वार।
आओ देखो अर्क धतूरा,
समझो इनका जीवन पूरा।।

अगणित रोग सहज ही हटतीं,
तुलसी रानी की महा माया।
ऑक्सीजन दिन-रात अकूता,
निर्मल पावन इसकी काया।।

घर-घर पूजन होता इसका,
रामबाण गुण ओत-प्रोत है।
दादी अम्मा के नुस्खों की,
संजीवन-सी सजग स्त्रोत है।।

सांठी रतनजोत कौंधरा,
हँसती गाती है चौलाई।
कहीं सुदर्शन का दर्शन सुख,
पल में कर देता भरपाई।।

पेड़ों की उन्नत बस्ती में,
बड़ पीपल चाहे हो नीम।
अर्जुन और अशोक आँवला,
एक से बढ़कर एक हकीम।।

-दर्शन शर्मा 'जिज्ञासु'
गाँव व डा. खोरी, जिला-रेवाड़ी

कितने रंग-बिरंगे सपने

कितने रंग बिरंगे सपने
बिखर गए तेरे आँगन में।

अलसाये नैनों की बातें।
छिप-छिप कर गुजरीं हैं रातें।
कभी टूट जाते हैं वादे,
याद बनी रहतीं सौगातें।

अधरों की रंगत भी जैसे
सिमट गई फागुनी पवन में।

कोयल बैरिन सी लगती है।
मुझे चाँदनी भी ठगती है।
शब्द आँसुओं से लिखता हूँ,
जब उर में कविता जगती है।

किसे सुनाऊँ पीर हृदय की
कसक बनी रहती है मन में।

तेरे केश हमारे कर थे।
कुछ पल वे कितने सुन्दर थे।
तरू सी छाँह सुलभ थी मुझको,
मेरे अरमानों के पर थे।

उतना ही दुःख पाता हूँ मैं
जितना सुख था क्षणिक मिलन में।

-कृष्ण कुमार 'कनक'
गाँव-डा.-गुँदाऊ ठार मुरली नगर
थाना लाइन पार, फिरोजाबाद

अध्यापक बनने और होने के बीच

जामगढ़/5 सितम्बर, 2005

आदरणीय गुरुजी,

प्रणाम! मैं आपका शिष्य राधारमण उर्फ राधे हूँ। शायद आपने मुझे विस्मृत भी कर दिया होगा। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि एक अध्यापक के जीवन में तो हजारों शिष्य आते हैं, चले जाते हैं, परन्तु शिष्यों के हृदय पटल पर अपने गुरुओं की तस्वीर इतने गहरे से अंकित होती है कि जीवन पर्यन्त उनकी स्मृति बनी रहती है। अध्यापक तो मेरे जीवन में सैंकड़ों आये। कुछ हल्की, कुछ गहरी, कुछ पीड़ादायक, कुछ सुखद स्मृतियाँ सबकी संजोयी हुई हैं। उन सब अध्यापकों के बीच गुरु जी तो केवल आप बने। कभी-कभी हम सहपाठी मिलते हैं तो आपका जिक्र श्रद्धापूर्वक करते हैं जबकि अन्य शिक्षकों पर उपहास भी करते हैं।

सबसे पहले तो मैं आपको अपनी पहचान कराने का प्रयत्न करता हूँ। वर्ष दो हजार में मैंने आपके विद्यालय से बारहवीं कक्षा पास की थी। मैं मेधावी छात्र तो नहीं था, परन्तु प्रारम्भ के आठ-दस छात्रों में मेरा नाम रहता था। मेरा रंग काला था इसलिए आप मुझे राधारमण न कहकर साँवरिया कहा करते थे। भगवान ने मुझे सुरीला कंठ दिया है इसलिए प्रत्येक शनिवार की बाल सभा में आप मुझसे गांधी जी का प्रिय भजन सुनते थे, वैष्णव जन...।

गुरुजी, मैं आपको पत्र के माध्यम से एक शुभ समाचार दे रहा हूँ कि मैं एक गाँव के सरकारी स्कूल में नियुक्त हो गया हूँ। अध्यापक होने के लिए मुझे आपके अनेक अनुभव याद हैं और भविष्य में भी आपसे मार्गदर्शन लेता रहूँगा।

शनिवार को बाल सभा में एक दिन आपने सभी बच्चों से पूछा था कि वे बड़े होकर क्या बनना चाहते हैं? मेरा नम्बर आया तो मैंने झट से कह दिया था-'गुरुजी, मैं बड़ा होकर डॉक्टर बनना चाहता हूँ।' उन दिनों वहाँ डॉक्टर को बहुत सम्मान मिलता था। इन्हीं सपनों के साथ मैंने विज्ञान की पढ़ाई भी आरम्भ की परन्तु आज मैं अनुभव करता हूँ कि भगवान ने मुझे इतनी तीव्र बुद्धि नहीं दी इसलिए विज्ञान को बीच में छोड़कर मैं केवल बी.ए. कर पाया। जब कोई दूसरा अच्छा विकल्प न मिला तो बी.एड. करके अध्यापक बनना ही सम्मानजनक लगा और वह मंजिल मैंने पा ली। मैं तो अध्यापक बन गया गुरुजी, परन्तु आप तो बड़े कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। मैं यह तो नहीं जानता कि आपका अध्यापक बनने में क्या उद्देश्य रहा होगा। जो भी हो गुरुजी, मैं अब एक अच्छा अध्यापक बनना चाहता हूँ, कृपया इसके लिए मुझे अपना आशीर्वाद प्रदान करें।

अनेक बार सुना और पढ़ा भी है कि गुरु संसार का सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति है। वह सच्चा ज्ञान देकर भगवान से मिला सकता है। न जाने मेरा भ्रम है या यथार्थ आज तक मुझे तो अपने विद्यालय में और आस-पास ऐसा गुरु दिखाई नहीं दिया। फिर वह किस गुरु के विषय में लिखा है? मेरी तो समझ में नहीं आता कि वह गुरु कैसे बना जा सकता है?

'जो कुछ कर नहीं सकता वह अध्यापक बनता है।' मुझे तो इस बात में कोई दम नहीं दिखाई देता क्योंकि अध्यापक बनना इतना आसान नहीं है कि जो चाहे वही बन जाये। सच मानना गुरुजी अध्यापक बनने की प्रक्रिया में मेरा शरीर छिल-छिल कर लहूलुहान हो गया है। अध्यापक बनने के लिए लोग दोनों जेबें भरे घूमते रहते हैं। मेरे पिताजी भी यही कहते थे-''बेटे शुरू में आधे एकड़ की मार है फिर सारी उम्र मौज करेगा।'' न तो उस दिन और न आज तक मैं उस 'मौज' का अर्थ समझ पाया। यह तो सच है अध्यापक कुछ न करे तो कोई पूछता नहीं, परन्तु कर्मठ अध्यापक का काम कभी पूरा नहीं हो सकता। बल्कि करने वाले को अधिक काम दिया जाता है और वही उसकी प्रतिष्ठा है।

आज दुनिया में सब विद्वान हैं सब दूसरे को उपदेश देना चाहते हैं कोई दूसरे की बात सुनना ही नहीं चाहता। यह तो अबोध विद्यार्थी हैं जो हमारी सारी अच्छी-बुरी बातों को सुनते रहते हैं और बिना किसी विरोध के स्वीकारते रहते हैं।

एक और बड़ा परिवर्तन आया है आजकल के विद्यार्थी हमें सर जी, मैडम जी कहकर संबोधित करते हैं गुरुजी शब्द में जो आदर व निष्ठा थी वह इस हिन्दी-अंग्रेजी के मिले-जुले शब्दों में कहाँ? मैंने बदलाव करने का सोचा था, परन्तु मुख्याध्यापक ने समझाया-'राधारमण सारी दुनिया अंग्रेजी के पीछे दौड़ रही है। अच्छे परिवारों के सब बच्चे प्राइवेट स्कूलों में चले जाते हैं। सरकार भी प्राइवेट स्कूलों के मुकाबले में अपने स्कूलों में कुछ सुधार करना चाहती है। इसीलिए मेरा सुझाव है, इस परिवर्तन को रहने दो।' गुरुजी मैं भी क्या बक-बक लेकर बैठ गया। ये सब पढ़कर आप मुझ पर हँसेंगे। परन्तु मैं भी क्या करता बहुत दिनों से आपके सामने बातें करने का मन हो रहा था, आज पत्र लिख कर मन संतुष्ट हो गया। यदि आपको कष्ट न हो तो आशीर्वाद स्वरूप कुछ पंक्तियाँ मेरे लिए अवश्य लिख भेजियेगा।

आपका
राधारमण 'साँवरिया'

सांकला, 2 अक्टूबर 2005

प्रिय राधारमण,

खुश रहो। तुम्हारा पत्र मिला। समझ में नहीं आया मुझे पत्र लिखने का तुम्हारा क्या प्रयोजन रहा है। वैसे तो मै तुम्हें पहचानने में असफल रहता परन्तु गाँधी जी के भजन ने तुम्हारी स्मृति को ताजा कर दिया। तुम्हारे कण्ठ की आवाज सुनकर उन दिनों मैं सोचता था कि तुम एक अच्छे गायक बनोगे परन्तु बहुत कठिन है कि आदमी का शौक और व्यवसाय एक हो जाये। खैर वक़्त ने तुम्हें अध्यापक बना दिया, परन्तु प्रिय राधारमण अब केवल अध्यापक नहीं एक शिक्षक बन कर दिखाना।

तुमने मेरे शिक्षक बनने की प्रक्रिया की चर्चा की। यह पूर्णतया सच है कि मेरे घोर व्यवसायी घराने में कोई अध्यापक बनने की कल्पना भी नहीं कर सकता। पारिवारिक परम्परा के अनुसार व्यवसाय करना, धन कमाना, धनवान होने की प्रतिष्ठा अर्जित करना मेरे लिए सरल ही था और अनुकूल भी। परन्तु मुझे लगा था कि प्रभु ने मुझे लिखने के लिए भेजा है। लेखन और अध्ययन दोनों कार्य अध्यापक के अनुकूल बैठते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षण को मैं श्रेष्ठ कार्य मानता हूँ। सुबह-सुबह निश्चित समय पर विद्यालय में प्रवेश। छात्रों-अध्यापकों का आपसी अभिवादन, फिर नन्हे-मुन्ने बच्चों के साथ सामूहिक प्रार्थना। दिन-भर ज्ञान-विज्ञान की चर्चा, अध्यापकों द्वारा नैतिक, श्रेष्ठ नागरिक बनने पर बल। शरीर को हष्ट-पुष्ट बनाने के लिए क्रीड़ा-अभ्यास, छात्रों में निहित नाना प्रकार की प्रतिभाओं का विकास- दुनिया में इससे अच्छा काम क्या हो सकता है?

आज भी समाज में अध्यापक का चाहे जो स्थान हो, परन्तु अन्य व्यवसाय या नौकरी से वह अधिक ईमानदार और विश्वसनीय है। स्कूल में उपस्थित अध्यापक सच बोलने की बात सिखाता है या चुप रहता है, परन्तु झूठ बोलने की प्रेरणा कभी नहीं देता।

प्रिय राधारमण, शिक्षक बनना तो आसान है, परन्तु शिक्षक होना मुश्किल है। समाज अध्यापक को एक विशिष्ट प्राणी मानता है और यह सच भी है, क्योंकि छात्रों के लिए अध्यापक अनुकरणीय होता है। इसलिए अनेक बार अध्यापक को अपने मन के विपरीत वह करना पड़ता है जो समाज के लिए श्रेष्ठ हो।

तुम नये-नये अध्यापक बने हो। तुम्हारे सम्मुख अनेक प्रकार के अध्यापक आयेंगे, परन्तु तुमको एक विशिष्ट कर्म योगी अध्यापक बनना है ताकि दूसरे तुमसे प्रेरणा लें। अधिक से अधिक समय अपने शिष्यों के साथ रहना है। भययुक्त अनुशासन नहीं बनाना भयमुक्त शिक्षण करना है। प्रत्येक छात्र में एक विशिष्ट प्रतिभा है। तुम्हें उसको दिशा बोध कराना है। उसकी जिज्ञासाओं को खुशी-खुशी शांत करना है, सभी शिष्यों को अपनी औलाद के समान मानना है। सच कहता हूँ तुम्हें इतनी खुशी व संतोष मिलेगा कि दुनिया का कोई भी सुख उतना आनंद नहीं दे पाएगा।

जानते हो भरे बाजार में गुजरते हुए जब एक सेठ-नुमा शिष्य ने दुकान से निकलकर सबके सामने मेरे पाँव छुए तो मुझे बहुत खुशी हुई थी। मन हुआ था कि चिल्लाकर सबके सामने कहूँ-'दुनिया वालो देखो, किसी भी व्यवसाय या

नौकरी में इतना गौरव और सम्मान है जो आज मुझे अध्यापक बनने पर मिला है।' अध्यापक दृढ़ संकल्प करके अपने मन में ठान ले तो कुछ भी बदल सकता है। अपने शिष्यों को बदलना तो बहुत आसान है, क्योंकि वे तो कच्ची मिट्टी के बने हैं, परन्तु अध्यापक तो उनके माँ-बाप को भी बदल सकता है, क्योंकि अभिभावकों की चाबी (बच्चे) उसके हाथ में है। मालूम नहीं तुम्हें याद है कि नहीं जब मैं 1998 में इस विद्यालय में आया था तो कई अध्यापक व बहुत सारे छात्र धूम्रपान करते थे। विद्यालय में एक माह तक संस्कार उत्सव चलाया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य धूम्रपान रोकना था। जब मैंने बच्चों के माध्यम से यह बात उनके घरों में भेजी कि जिनके परिवार में एक व्यक्ति भी धूम्रपान करता है तो परिवार के नन्हे-मुन्ने बच्चों को भी न चाहते हुए धूम्रपान करना पड़ता है। उनके अभिभावक ही उनके नाजुक फेफड़ों को खराब कर रहे हैं। परिणाम जानने के लिए संस्कार उत्सव समापन पर अभिभावकों की प्रतिक्रिया जानी, तो आश्चर्यजनक परिणाम सामने आये। बच्चों ने जिद् करके, प्रार्थना करके अपने घर में धूम्रपान बंद करवा दिया। स्कूल में धुँआ उड़ाना वैसे ही बंद हो गया। ऐसी अपूर्व शक्ति संजोए हैं अध्यापक।

प्रिय राधारमण, मैं इसलिए अध्यापक बना कि साहित्य साधना के लिए पर्याप्त समय और उपयुक्त वातावरण मिल जाएगा, परन्तु अध्यापक बनने के बाद मैंने समझा कि अध्यापक के पास तो समय का बड़ा अभाव है। वह कितना भी कार्य करे वह पूरा हो ही नहीं सकता। साहित्य सृजन के लिए अन्दर की कुलबुलाहट जो हिलोर मारकर कागज पर उतारना चाहती थी, वह छात्रों के साथ अभिव्यक्त होकर शांत हो जाती। इसलिए अध्यापक बनकर खूब लिखने का जो विचार था उसके लिए न मन ही तैयार होता और न समय ही मिलता। अब तुम केवल शिष्य नहीं हो, मेरे अनुरूप, एक शिक्षक का, राष्ट्र निर्माता का कार्यभार तुम्हारे कँधे पर आ गया है। मेरा सम्पूर्ण सहयोग और आशीर्वाद तुम्हारे लिए है।

बहुत-बहुत शुभकामनाओं के साथ।

तुम्हारा
विद्या भूषण

जामगढ़ 5 सितम्बर, 2010

आदरणीय गुरुजी,

प्रणाम। लगभग पाँच वर्ष पूर्व आपका पत्र मिला था। वह पत्र नहीं मेरे लिए गीता-अमृत था। जब कभी मन कुंठित व व्यथित होता तो आपके पत्र को निकाल कर पढ़ लेता था। सच मानना पत्र पढ़कर मेरा मन खुशी व उत्साह से भर जाता और मुझे सही दिशा का बोध करा देता। आपने इतना जीवंत व प्रेरणादायक पत्र लिखकर मुझ जैसे पूर्व शिष्य पर जो अनुकम्पा की है वह केवल मेरे लिए नहीं, सभी शिष्यों के लिए आशीर्वाददायक रहेगी। अध्यापक बनने के बाद पिछले पाँच वर्षों में मैंने एक शिक्षक के कार्य को करीब से देखा है। शिक्षण कार्य पहले से दुरुह हो गया है। कक्षाओं में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसको देखने के लिए शिष्य आए, वहाँ सुनने के लिए कुछ भी नवीन व रोचक नहीं है जो छात्र के कानों को आकर्षित करे, वहाँ करने को कुछ नहीं है जो फलदायक या प्रेरणादायक हो। प्रारम्भ में लगभग आधे छात्र स्कूल में प्रवेश करते थे। जो आते वो भी एक दो घण्टी इधर-उधर घूमकर चले जाते। अर्द्धावकाश के समय पूर्णावकाश जैसा वातावरण बन जाता।

छात्रों को जोड़ने के लिए मैंने अभिभावकों के साथ सम्पर्क किया। यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि आस-पास से आने वाले गाँवों के कुछ बच्चों का निरन्तर अनुपस्थित रहने से स्कूल से निष्कासन हो गया है, परन्तु वे अपने अभिभावकों से प्रतिदिन झूठ बोलकर पढ़ाई के लिए खर्च ले आते और सारा दिन बाजार, स्टेशन, सिनेमाघर में घूमकर घर लौट जाते। जब अभिभावकों को यह पता लगा कि स्कूल में उनका नामांकन भी नहीं तो उन्होंने दाँतों तले उँगली दबा ली।

कुछ अभिभावकों को सजग करके, छात्रों को समझाकर, खेलों के माध्यम से बच्चों को स्कूल से जोड़ा गया। नियमित प्रार्थना होने लगी। स्कूल में फूल-पौधे लगाये गये। स्कूल-भवन में पहली बार सफेदी हुई, लैब और पुस्तकालय की धूल झाड़ी गई। जहाँ गाली-गलौच व फिल्मी गानों का चलन था वहाँ भजन, प्रार्थना होने लगी। धीरे-धीरे वह भवन स्कूल

का रूप लेने लगा। इस प्रक्रिया में कई अवसर ऐसे भी आए जब छात्रों, अभिभावकों, अधिकारियों व अध्यापकों के कारण मन कुंठित व कलांत हुआ। उन जैसा बन जाने का भी मन हुआ परन्तु आपकी प्रेरणा व आशीर्वाद ने मुझे बचा लिया।

शहरों से फैलता हुआ अब ट्यूशन का जाल कस्बों और गाँवों तक फैल गया है। इस विद्यालय के विज्ञान और गणित अध्यापक खूब ट्यूशन करते हैं। स्कूल से अधिक परिश्रम वे घर की कक्षाओं में करते हैं। अंग्रेजी का अध्यापक होने के नाते आरम्भ में कुछ विद्यार्थी मेरे पास भी ट्यूशन रखने आये थे। मैंने तो स्पष्ट कह दिया–स्कूल में मुझ से कुछ भी समझ लो, घर पर समझने आ जाओ, परन्तु ट्यूशन के रूप में नहीं। गुरु जी आपने ही बताया था कि ट्यूशन करने वाले अच्छे से अच्छे अध्यापक में भी कमजोरी आ जाती है। आपका अनुकरण करते हुए मैंने भी ट्यूशन न करने का संकल्प किया हुआ है। जो अध्यापक ट्यूशन नहीं करते, वे दूसरे पार्ट टाइम काम करते हैं। सामाजिक ज्ञान का अध्यापक प्रोपर्टी डीलर का काम करता है। बहुत कम स्कूल आता है और जब आ जाता है तो उसके कान पर फोन लगा रहता है। ड्राइंग मास्टर की स्टेशनरी की दुकान है, सुबह उसकी पत्नी और शाम को वह खुद दुकान पर बैठते हैं। संस्कृत शिक्षक, शास्त्री जी, विवाह–महूर्त, जन्म–पत्री, ज्योतिष आदि अनेक कामों में लगे रहते हैं। पी.टी.आई. दिन–रात अपने खेतों तथा पशुओं की देखभाल करने की योजना बनाता रहता है। सायं को दूध बेचता है और स्कूल में बैठकर सबका हिसाब जोड़ता है। संक्षेप में कहूँ तो पूरा स्कूल एक डिपार्टमैंटल सर्विसिज एजेन्सी–सा लगता है।

आपने ठीक लिखा है कि अध्यापक के शब्दों में बहुत ताकत होती है। दृढ़ इच्छा से कुछ भी कराया जा सकता है। मैंने कई छात्रों पर इसका प्रयोग किया। आपकी दया से सफलता मिली। उत्साह भी बढ़ा और अधिकारियों में साख बढ़ी। प्रत्येक मास जिला शिक्षा अधिकारी कार्यालय में होने वाली मासिक बैठक में मुझे शैक्षिक सलाहकार के रूप में बुलाया जाने लगा है।

गुरु जी एक बात मैं सच्चे मन से आपके सामने रखना चाहता हूँ। जब मै छात्र था तो सोचता था गुरु जी सदैव बच्चों के पीछे पड़े रहते हैं। क्यों प्रतिदिन स्कूल आ धमकते हैं? कोई नेता क्यों नहीं मरता की स्कूल की छुट्टी हो जाए? क्यों बार–बार परीक्षा का आतंक दिखाया जाता है? परन्तु आज ये सब बातें बेमानी लगती हैं। कैसी नादानी थी उन दिनों। आज अध्यापक बनने के बाद साफ–साफ समझ में आ रहा है। छात्रों को श्रेष्ठ बनाने के लिए अध्यापक को कुछ तो अंकुश लगाना ही पड़ता है। कच्चे घड़े की मानिंद एक ओर से हाथ का सहारा देकर पीटना पड़ता है। तभी तो घड़े का सुन्दर व उपयोगी रूप बनकर निकलता है।

विद्यार्थियों के साथ खेलना मैंने आपसे सीखा था। आपके साथ इस सुखद समाचार को भी बाँटना चाहता हूँ कि इस वर्ष हमारे विद्यालय की फुटबाल टीम ने जिला स्तरीय खेलों में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। हमारी टीम के पाँच छात्रों का चयन स्टेट में खेलने के लिए हुआ है। इन्हीं सफलताओं के कारण छात्र व अभिभावक मेरा बहुत सम्मान करते हैं। दूध, दही, लस्सी, अनाज, गुड़ न जाने क्या–क्या मेरे मना करने के बाद भी चुपचाप मेरे घर में रख जाते हैं। आपने सच लिखा था गुरुजी, यह सब मान–सम्मान और आनंद किसी और व्यवसाय में कहा..?

गुरु जी, ये सच है, मैं जार्ज बर्नाद शॉ के अनुसार जब कुछ न बन सका तो शिक्षक बन गया, परन्तु आप निश्चय रखना मैं अध्यापक बन तो गया, अब अध्यापक होकर भी दिखाऊँगा।

अपना आशीर्वाद यथावत बनाए रखना।

आपका शिष्य

राधारमण

सांकला, 2 अक्टूबर, 2010

प्रिय राधारमण,

उर्द्धोभव: । तुम्हारा दूसरा पत्र पढ़कर मुझे जो खुशी और संतोष हुआ वह ऐसा ही था जो एक दीपक द्वारा दूसरे दीपक को प्रज्वलित करके होता है। माता-पिता और गुरु संसार में ऐसे प्राणी हैं जो अपने अनुज को अपने से भी बड़ा देखकर गर्व अनुभव करते हैं, क्योंकि उसमें उनका शारीरिक और वैचारिक अंश होता है।

आधुनिक युग में धन-लोलुपता को त्याग कर तुम ट्यूशन से अलग रहे हो तो मैं तुम्हें अपने से अधिक श्रेष्ठ बनाता हूँ। क्योंकि जिन दिनों मैंने ट्यूशन से बचने का फैसला किया था उन दिनों यह कार्य अधिक दुरुह नहीं था। परन्तु आज के भौतिक युग में यह बहुत कठिन कार्य है।

ऐसा नहीं है कि पूरा शिक्षक समाज आलसी, भ्रष्ट और गैर-जिम्मेदार है। यदि ऐसा होता तो शिष्यों का शिक्षकों से विश्वास उठ चुका होता। यूँ कहीं-कहीं ऐसा समाचार भी आ जाता है जो गुरु के सम्मान और प्रतिष्ठा पर प्रश्न चिह्न खड़ा कर देता है, परन्तु उन अध्यापकों की चर्चा नहीं होती जो चुपचाप मनोयोगपूर्वक अपने शिष्यों के सर्वांगीण विकास में लगे रहते हैं।

सायं के समय मैं दो घंटे बच्चों के साथ फुटबाल खेलता हूँ। बच्चों को तो लाभ होता ही है, परन्तु इससे मुझे जो स्वास्थ्य लाभ मिलता है उसी का परिणाम है कि पचास साल पार कर जाने के बाद भी लोग मुझे 35-40 का समझते हैं। यह क्या कम उपलब्धि है कि पचास साल बीत जाने के बाद भी मैंने आज तक किसी भी प्रकार की दवा का सेवन नहीं किया है। किसी अयोग्य छात्र को योग्य बनाने के लिए प्रेरित करना, उस पर उसका प्रभाव दिखाई देना सचमुच कितना संतोष और सुख प्रदान करता है इसका मैं आजकल अनुभव करने लग गया हूँ। पूरा दिन, सप्ताह, माह और एक वर्ष कब बीत जाता है पता ही नहीं चतला। पुराने छात्र जाने के बाद नये छात्र, नये अनुभव, नया संघर्ष, सब कुछ कितना मजेदार होता है, बताया नहीं जा सकता। आज के युग में रोजी-रोटी कमा लेना कोई मुश्किल कार्य नहीं है। रोजी-रोटी से पेट तो भर जाता है लेकिन एक मन की भूख होती है, ज्ञान की पिपासा होती है, उसी को शांत करने के लिए एक शिष्य अपने गुरु के पास आता है। उन दोनों के बीच जब सही संवाद होता है तब शिक्षण का विकास होता है। यही निरन्तर संवाद ही अध्यापक को श्रेष्ठता प्रदान करता है।

एक अच्छा अध्यापक कभी नहीं मरता। वह अपने शिष्यों के विचारों में सदैव परिलक्षित होता रहता है। छात्र एक आइना होता है। तुम्हारे खतों को पढ़कर आज मुझे अपने गुरु जी की याद आ गयी। उनका बहुत प्रभाव है मुझ पर। काश वो इस दुनिया में होते तो मैं उन्हें ख़त लिखता।

राधारमण, मैं तुम्हें क्या बताऊँ अध्यापक तो एक राजा के समान होता है। राजा कंस ने अपने पिता को कारागार में डालने से पूर्व उनकी इच्छा जाननी चाही तो महाराज उग्रसेन ने समय व्यतीत करने के लिए कुछ शिष्यों को पढ़ाने की इच्छा व्यक्त की थी, तब दुष्ट कंस ने कहा था अभी तक सम्राट बनने की बू आपमें से गई नहीं। हमारे धर्म-शास्त्र इस बात के गवाह हैं कि राजा ने सदैव अपने गुरुओं को अपने से श्रेष्ठ और सम्मानित समझा है तभी तो अरस्तु ने सिकन्दर से कहा कि भारत से मेरे लिए एक गुरु लेकर आना। यही सच्चे गुरु की प्रतिष्ठा है और इसी प्रतिष्ठा को हमें बनाये रखना है।

तुम्हारा
विद्याभूषण

राधारमण को इतना लम्बा पत्र लिखकर विद्याभूषण ने लिफाफे में बंद कर दिया। इत्मिनान से उसको एक तरफ रख पढ़ने के लिए अखबार उठाया तो प्रथम पृष्ठ पर राज्य पुरस्कार के लिए श्रेष्ठ अध्यापकों की लिस्ट छपी हुई थी। लिस्ट में पहला ही नाम राधारमण का था। विद्याभूषण ने खड़े होकर पेपर उछाल दिया और आत्म-विभोर होकर नाचने लगे। एक क्षण ऐसा लगा की यह पुरस्कार उनके लिए ही घोषित हुआ है। वे राधारमण को हार्दिक बधाई देने के लिए सावधानीपूर्वक लिफाफे में पड़े खत को खोलने लगे।

-मधुकांत
211 -एल, मॉडल टाउन, डबल पार्क, रोहतक

उत्कोच-दर्शन

आप आश्चर्य करेंगे कि उत्कोच अर्थात घूस का भी कोई दर्शन हो सकता है! जी हाँ।

अपने इस दर्शन को समझाते हुए आर.टी.ओ. विवेकशरण जी कह रहे थे-'देखो भाई, मैं किसी का भी काम नहीं रोकता, उसे जल्दी से जल्दी निपटाता हूँ। क्योंकि काम में देर लगाना काम न करने के बराबर होता है। इतना ही नहीं फिर आपकी नीयत पर भी शक होने लगता है। इसलिए मैं काम शीघ्र निपटाता हूँ। फिर इस काम के बदले में उससे कोई कार्य-शुल्क की माँग भी नहीं करता। मेरी इस तत्परता से प्रसन्न होकर यदि कोई स्वेच्छा से कुछ दे देता है तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ। ऐसा धन मेरी समझ में विकार रहित शुद्ध दूध की तरह होता है। यह उत्कोच का उत्तम प्रकार है। उत्कोच का मध्यम प्रकार वह होता है जब संकेत करने पर वह मिल जाये। उदाहरण के लिए जिसका काम मैंने तत्परता से कर दिया जब वह इसके बदले केवल धन्यवाद देकर जाने लगता तो मैं संकेत करता हूँ- 'मैंने आपका काम शीघ्र निपटा दिया। क्या इसके बदले मुझे पुरस्कार नहीं मिलना चाहिए?' इस संकेत से प्रेरित होकर यदि वह मुझे कुछ पत्र-पुष्प प्रदान कर देता है तो उसे मैं शुद्ध जल समझकर स्वीकार कर लेता हूँ। यह उत्कोच का मध्यम प्रकार है। उत्कोच का एक तीसरा प्रकार भी होता है, इसमें काम के बदले दाम पहले ही सौदेबाजी करके तय कर लिया जाता है। इसमें यह साफ कर दिया जाता है कि बिना दाम के काम नहीं होगा। इस शर्त के साथ काम करके जो उत्कोच प्राप्त किया जाता है, वह अधम कोटि का होता है। इसे मैं कभी स्वीकार नहीं करता, क्योंकि वह शुद्ध खून की तरह होता है और मैं खून चूसने वाला असुर अधिकारी नहीं हूँ।'

इस वक्तव्य के साथ विवेकनारायण जी ने अपनी तकरीर समाप्त की।

-डॉ.गार्गीशरण मिश्र 'मराल'

1436-बी, सरस्वती कॉलोनी, चेरीताल वार्ड, जबलपुर

दीपक तले अंधेरा

मशहूर पंडित दीर्घायुनंद के घर के बाहर बोर्ड लगा हुआ था-'यहाँ पर दीर्घायु प्राप्ति के लिए जाप किया जाता है। एक बार सेवा का मौका दें।'

वह सब कुछ समझते हुए भी समय लेकर एक दिन दीर्घायुनंद के पास गया। पंडित जी ने बताया-'आपकी राशि के अनुसार मंत्र की क़ीमत बनती है ग्यारह हज़ार रुपये। कल मंत्रोच्चारण और पूजा-पाठ के अवसर पर यह राशि आप अदा कर दें।'

अगले दिन वह पंडित जी के घर पहुँचा। घर के बाहर जमा भीड़ ने बताया कि दीर्घायुनंद की 42 वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई है।

चरित्र

वह सफेद कपड़े पहने हुए बस की अगली सीट पर बैठा लंबे-चौड़े लच्छेदार भाषण झाड़ रहा था-'वास्तव में चरित्र मनुष्य के लिए सर्वोपरि है। यदि चरित्र गिर गया तो सब कुछ गिर गया।'

बस किसी स्टॉप पर रुकी। वह अपना ब्रीफकेस संभाले एक बड़े रेस्तरां में घुस गया। कुछ घंटों के बाद जब वह बाहर निकला तो उसके कदम लड़खड़ा रहे थे। आँखें लाल हो रही थीं और बगल में एक अधेड़ उम्र की स्त्री उसे सहारा देकर चल रही थी।

-घमंडीलाल अग्रवाल

785/8, अशोक विहार, गुड़गाँव

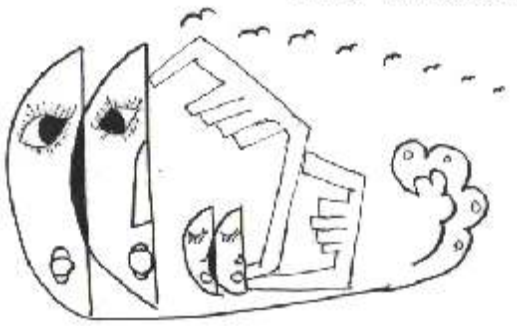

कौन-सी ज़मीन अपनी... ?

'ओये मैंने अपना बुढ़ापा यहाँ नहीं काटना, यह जवानों का देश है, मैं तो पंजाब के खेतों में, अपनी आख़िरी साँसें लेना चाहता हूँ।' जब वह अपने बच्चों को यह कहता, तो बेटा झगड़ पड़ता, 'अपने लिए आप कुछ नहीं सहेज रहे और गाँव में ज़मीनों पर ज़मीन खरीदते जा रहे हैं।'

वह मुस्कराकर कहता-'ओ पुत्तर, तूं और तेरी भैण ने मेरा सिर ऊँचा कर दिया है, अमेरिका में मेरी मेहनत सफल कर दी है। मैंने तो आसमान छू लिया है... तूं डॉक्टर बन रहा है और तेरी भैण वकील। बेटा जी, इससे ऊपर तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए। तुम नहीं समझ सकते, अभी बाप नहीं बने हो ना।'

बेटा बहस करता-'वह सब ठीक है पापाजी, पर एक घर तो बनवा लें, सारी उम्र दो रूम वाले टाउन हाउस में गुजार दी। कल को हमारे बच्चे आपके पास आयेंगे तो कहाँ खेलेंगे?'

'पुत्तर जी, पंजाब के खेतों में बड़ा खुला घर बनवाऊँगा, वहाँ खेलेंगे। जब हम यहाँ सबसे मिलने आयेंगे, तब तेरे और तेरी भैण के पास रहेंगे, वहाँ खेलने के लिए काफी जगह होगी...।'

बेटा उनकी ज़िद्द के आगे हथियार डाल देता, बेबस सिर झटक कर घर से बाहर निकल जाता, 'ही विल नैवर चेन्ज।'

मनविन्दर भी तो बेबस हो जाती थी। दारजी और बीजी की चिट्ठी आते ही मनजीत सिंह सोढ़ी नवाँशहर 'पंजाब' में अपने भाइयों को ज़मीनें खरीदने के लिए पैसे भेज देता था।

मनविन्दर तड़प कर रह जाती, समझाने की सब कोशिशें बेकार हो जाती थी, 'सिंह साहब घर के खर्चों की ओर भी ध्यान दीजिए, ठीक है बच्चे स्कॉलरशिप पर पढ़ रहे हैं, पर उनके और भी तो खर्चे हैं, चार कारों की किश्तें जाती हैं। इतनी ज़मीनें खरीदकर क्या करेंगे?'

'मनविन्दर कौरे, जाटों की पहचान ज़मीनों से होती है।' बड़े गर्व से छाती चौड़ी कर मनजीत सिंह कहता।

यही बात झगड़े का रूप ले लेती, 'पर कितनी पहचान सरदार जी, कहीं तो अंत हो। वर्षों से आपके घरवाले ज़मीनें ही तो खरीद रहे हैं। पैसों का कोई हिसाब-किताब नहीं, यहाँ ज़मीन बिकाऊ है, वहाँ ज़मीन बिकाऊ है, यह टुकड़ा खरीद लो, गाँव की सरहद से लगे खेत ले लो। किल्ले पर किल्ले इकट्ठे करते जा रहे हैं।'

मनविन्दर का पारा चढ़ते देख मनजीत घर से बाहर दौड़ लगाने चला जाता और फिर दूसरे दिन ही एक चैक पंजाब नैशनल बैंक में दारजी के नाम भेज देता। मनविन्दर बस रोकर रह जाती।

रोई तो वह तब भी थी जब मनजीत सिंह सोढ़ी से तीस वर्ष पहले उसकी शादी हुईथी। हालाँकि उसका तो सारा परिवार अमेरिका में था, फिर भी वह रोई थी, दादा-दादी को छोड़ते समय। मनविन्दर के दो भाई यूबा सिटी 'कैलिफोर्निया' के खेतों में काम करते थे। नाज़ायज तरीके से वे अमेरिका में आये थे, पर मैक्सिकन लड़कियों से शादी कर जायज हो गये थे, यानी ग्रीन कार्ड होल्डर। पाँच साल बाद अमरीकी सिटीजन बनकर, उन्होंने अपना पूरा परिवार बुला लिया था। तब इमिग्रेशन के कायदे-कानून इतने सख़्त नहीं थे जितने अब हैं।

छह फुट लम्बे, कसरती, सुगठित गोरे सिख मनजीत सिंह को दादा-दादी ने ही तो पसंद किया था। माँ-बाप और दो छोटे भाई थे उसके। गरीब घर के बेटे को जानबूझ कर पसंद किया गया था, ताकि मनविन्दर की कद्र कर सके। नौजवान मनजीत, मनविन्दर के साथ आसूँ बहाता अमेरिका आ गया था।

मनजीत अधिक पढ़ा-लिखा नहीं था और मनविन्दर नहीं चाहती थी कि उसके भाइयों की तरह उसका पति भी खेतों में काम करे। शादी से पहले ही अपने भाइयों को समझाकर, कायल करके, उसने उनसे बैंक में अग्रिम राशि...डाउन पेमैंट के रूप में दिलवा दी थी, और गैस स्टेशन का लोन लेकर, कैरी 'नार्थ कैरोलीना' में गैस स्टेशन खरीद भी लिया था।

शादी के बाद भारत से वे सीधे कैरी ही आये थे। मनजीत सिंह को जब तक ग्रीन कार्ड नहीं मिला, मनविन्दर गैस स्टेशन के व्यवसाय में मुख्य भूमिका में रही तथा बाद में मनजीत सोढ़ी उसका मालिक हो गया। मनविन्दर सिलाई-

कढ़ाई में माहिर थी। गैस स्टेशन मनजीत के हवाले करके, उसने उसी समय अमरीकी दुल्हनों के कपड़े सीलने की दुकान शुरू की, जो बाद में 'वैडिंग गाउन बुटीक' बन गया। बुटीक खूब चल निकला और उसका काम इतना बढ़ गया कि बीस लोग मनविंद्र के साथ काम करने लगे–कुछ भारतीय मूल के थे और कुछ स्थानीय। अपने आकर्षक व्यक्तित्व और मधुर बोली से मनजीत कैरी शहर के सब समुदायों के लोगों में लोकप्रिय हो गया। तब गिने–चुने भारतीय थे, अब तो चारों ओर भारतीय ही नज़र आते हैं। लोग उन्हें प्यार से वीर जी और मनविंदर को भाभी जी कहने लगे थे।

तब से अब तक मनजीत का एक ही सपना रहा कि बुढ़ापा भारत में बिताना है। मनविंदर, मनजीत की इस उत्कंठा के आगे मजबूर हो चुकी थी, उम्र के इस पड़ाव में, वह भारत जाना नहीं चाहती थी, यह देश उसे अपना–सा लगता, उसका पूरा परिवार अमेरिका में फैला हुआ है। साथ–साथ फले–फूले वे मित्र, सालों पहले बने रिश्ते जो समय के थपेड़ों से प्रगाढ़ हुए, सब छोड़ना उसके लिए आसान नहीं था...ये रिश्ते जन्म से मिले रिश्तों से कहीं गहरे हो गए थे...जीवन की कड़कड़ाती धूप, बरसात और ठंडक ने इन्हें पका दिया था। भारत के रिश्तों के लिए तो वे बस मेहमान बनकर रह गये थे, जो साल या दो साल में एक बार उन्हें, रिश्तेदार होने व अपनेपन का एहसास दिलाते थे।

मनजीत आज भी तीस साल पुराने सम्बंधों में ही जी रहा था। समय का परिवर्तन भी उसकी सोच व रिश्तों के प्रति दृष्टिकोण में कोई अन्तर न ला सका। भारत की प्रगति और बदलता परिमंडल भी उसकी ठहरी सोच के तालाब में कंकर फेंक, लहरें पैदा नहीं कर सका था। मनजीत को समझाना मनविंदर के लिए बहुत मुश्किल हो रहा था, वह हर समय तनाव में रहने लगी थी।

बच्चों ने अपनी पसंद से शादियाँ कर लीं। मनविंदर ने सोचा कि शायद अब मनजीत के स्वभाव में कुछ परिवर्तन आ जाये, घर में बहू और दामाद आ गये हैं। पर मनजीत अपने आप को हर ज़िम्मेदारी से मुक्त समझने लगा और मन ही मन पंजाब में घूमता रहा। अपने खेतों में पहुँच जाता... तीनों भाई गन्ने के खेतों में घूमते, गन्ने चूसते फिर गन्ने के रस से दार जी गर्म–गर्म गुड़ बनाते और तीनों भाई गर्म गुड़ की भेली सूखी रोटी के साथ खाते। शक्कर में एक चम्मच देसी घी और डलवाने की मनजीत ज़िद करता, छोटे भाई बिलबिलाकर, पैर पटक–पटककर अपनी कटोरियाँ बीजी के आगे करते। ऐसे में बीजी बड़ी समझदारी से दोनों छोटों को प्यार से सहलातीं, मुस्कराते हुए कहतीं–'मनजीता मेरा जेठा पुत्तर है, इसने बड़ा हो के सानूं सब नूं संभालणा है, इस नूं ताकत दी बहुत ज़रूरत है।' और दोनों छोटों की कटोरी में आधा–आधा चम्मच घी डाल देतीं। सरसों का साग और मकई की रोटी परोसते समय भी बीजी चाटी में हाथ डालकर मुट्ठीभर मक्खन उसके साग पर डाल देतीं और लस्सी के छन्ने को भी मक्खन से भर देती थीं। छोटों को वे आधे हाथ के मक्खन में ही टाल जातीं।

नींद में भी मनजीत गाँव वाले घर पहुँच जाता... आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित पक्का घर, ट्रैक्टर, कामग़ार और... बीजी का बार–बार मनजीत का माथा चूमना, छोटों का गले लगना और साथ सटकर बैठना। दार जी का, अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए गर्दन अकड़ा कर अपने दोस्तों को सुनाना–'पुत्तर होवे तां मनजीता वरगा, अमरीका जा के वी ऍह सानूं नहीं भुलिया। साडा पेट भर गया, पर ऍह डालर भेजता नहीं थकिया... ज़मीनां जट्टां दा स्वाभिमान हुंदा है... मेरे पुत्तर ने मेरा मान रखिया।'

सुबह मनजीत तरोताजा और ऊर्जा से भरपूर उठता... सारा दिन इसी तरंग में रहता कि इतना प्यार करने वाले परिवार में बुढ़ापा कितना बढ़िया गुज़रेगा। बेटा–बेटी तो अपनी ज़िन्दगी में व्यस्त हो गये हैं। कभी सोचता कि ज़मीनों के दो–चार टुकड़े बेचकर गाँव का स्कूल ठीक करवा दूँगा, दीवारें काफी गिर गई हैं, कुछ कम्प्यूटर भी ले दूँगा... बच्चों को पढ़ाई की सख़्त ज़रूरत है, उसकी प्राथमिकता होनी चाहिए। अगर वह पढ़ा–लिखा होता तो अमरीका में इतनी सख्त मेहनत न करता, डॉक्टर, साइंटिस्ट, इंजीनियर बनकर वह भी सम्पन्न जीवन जीता।

मनजीत अपने आप से बातें करता–'दार जी नहीं मानेंगे, वे गुरुघर को चंदा देना चाहेंगे। बीजी को समझाकर उन्हें भी मना लूँगा।'

सुखद कल्पनाओं और भारत लौटने की चाह में वह दिन गिन रहा था। अंतत: वह दिन भी आ गया। मनजीत को गैस स्टेशन खरीदने वाला मिल गया, पार्टी ऐसी थी जिसने बुटीक भी खरीद लिया।

बस अब जल्दी–जल्दी घर का सारा सामान गैराज सेल में रखा गया और कुछ सामान बच्चे ले गये। जो नहीं बिका

उसे वियतनाम वैटेरंस वाले अपने ट्रक में उठा कर ले गये।

मनजीत को अमेरिका में दिन काटने मुश्किल हो रहे थे और मनविंदर उदास-परेशान रहने लगी, उसके सिर में हर समय दर्द रहने लगा। बात-बात में झगड़ना उसकी दिनचर्या हो गई थी। मनजीत की दृढ़ता के आगे भारत जाने का वह खुलकर विरोध नहीं कर पा रही थी। चुप, शांत यंत्रवत-सी वह सारे काम कर रही थी।

'बैंक जाकर मैं सारा पैसा पहले ही वहाँ परिवार में भिजवा देता हूँ, ताकि जाते ही काम शुरू करवा दूँ।' मनजीत के इस कथन से मनविंदर के अंदर का लावा ज्वालामुखी बन फट पड़ा। 'खबरदार! सरदार मनजीत सिंह, अगर इस पैसे को हाथ लगाया। मैं और हमारे बच्चे भी आपका परिवार हैं, सिर्फ पंजाब में ही आपका परिवार नहीं बसता... और आप तो वर्षों से कहते आये हैं कि वहाँ कुछ ज़मीन बेचकर सारे काम पूरे करेंगे, कल ही मैं जाकर इसे वकोविया बैंक में जमा करवा दूँगी सी.डी. में।'

मनविंदर की कड़क आवाज़ भी मनजीत को विचलित नहीं कर पाई और वह अपने मीठे लहज़े में फिर बोला- 'सरदारनी जी, इतना गुस्सा ठीक नहीं, हमने इस देश में वापिस थोड़े ही आना है, गये तो पलटकर क्या देखना?'

मनविंदर बिखर पड़ी-'क्या बच्चों को मिलने नहीं आयेंगे? तब उनसे पैसे माँगेंगे, पोते-पोती, नवासे-नवासी को गिफ्ट देने के लिए बच्चों के आगे हाथ फैलायेंगे?'

वह शांत लहज़े में बोला-'ओ मेरी हीरे, अपने राँझे की बात गौर से सुन, हमारे बच्चों को इस पैसे की ज़रूरत कहाँ है। डॉक्टर और वकील के पास तो रब्ब की मेहर होती है... गिफ्ट हम पंजाब से लायेंगे।'

मनविंदर का धैर्य अब जवाब दे गया था-'नवांशहर में इस पैसे की ज़रूरत है? जहाँ ज़मीनों की कीमतें आसमान छू रही हैं। अपनी ज़िद पर अगर अड़े रहे तो, आप अकेले ही भारत जायेंगे, मैं यहाँ इसी टाउन-हॉउस में रह कर बच्चों को मिलने जाती रहूँगी और आप पंजाब में अपने परिवार के साथ बुढ़ापा बिताना।'

यह सुनते ही मनजीत ढीला पड़ गया... मनविंदर के व्यक्तित्व के इस पहलू से वह वाकिफ़ था। बेवजह वह उत्तेजित नहीं होती, पर अगर कोई निर्णय वह ले ले, तो उसे वापिस मनाना भी आसान नहीं।

आसान तो मनजीत को कुछ भी नहीं लग रहा, दो दिन बाद वापसी है और पल-पल काटना कठिन हो रहा है। मन खेतों की मेड़ों और पैलियों में झूम रहा है और धड़ यहाँ घिसट रहा है। पंजाबी गुट और अन्य समुदायों ने विदाई की पार्टी दी, पर मनजीत ने बस औपचारिकता निभाई। मनजीत का मन अमेरिका से उचट गया था।

कैरी से न्यूयार्क और न्यूयार्क से दिल्ली तक का सफर एयर इंडिया के जहाज़ में, उसने तो सो कर या रब ने बनाई जोड़ी फिल्म देखकर काटा। टाउन हॉउस को बेचा नहीं गया, बच्चों ने ज़िद करके, इस तर्क के साथ कि उनका बचपन और जवानी उसमें बीती है, उसे अपने पास रख लिया था। फिलहाल उसे किराये पर चढ़ा दिया गया, किरायेदार को सौंपने और सामान की पैकिंग करने से मनविंदर बहुत थक गई थी, वह तो सारे रास्ते सोती गई। दोनों की आपस में कोई ज़्यादा बातचीत नहीं हुई।

मनविंदर कई दिनों से गुमसुम थी, मतलब की बात करती, मनजीत कुछ पूछता बस उसी का उत्तर देती, उससे ज़्यादा कभी नहीं बोलती।

पर उसके पास मनविंदर की तरफ़ ध्यान देने का समय ही कहाँ था... वह तो भारत जाने के सरूर में मस्त था... जहाज़ में भी उसे महसूस नहीं हुआ कि मनविंदर किस अप्रतिम वेदना से गुजर रही है। मूवी देखकर वह सो गया।

मनविंदर को प्यास लगी और उसकी आँख खुल गई। एयर होस्टेस से उसने पानी मंगवाया। साथ की सीट पर बच्चों की तरह सो रहे मनजीत को वह अपलक निहारती रही...।

इसके प्यार की ख़ातिर वह गृहस्थी की तकली पर सुतती रही, पर कभी उफ़ नहीं की... अब तो उसकी भावना ही अटेरनी चढ़ गई है... वह बस अटेरी जा रही है... और इसे ख़बर भी नहीं है।

आदमी अपनी धुन में औरत से इतना बेख़बर कैसे हो जाता है? जिससे प्यार करता है, उसकी अग्नि-परीक्षा लेते हुए उसका दिल क्यों नहीं दुखता? दादी कहती थी, आदमी की ज़िद बच्चों जैसी होती है, प्यार से मना लेते हैं... पर यहाँ तो प्यार, गुस्सा कुछ काम नहीं आया। सोचों ने उसका सिर भारी कर दिया और थकान भी शरीर को ढ़ीला करने लगी, नींद हावी हो गई... उसने सिराहना उठाया, जहाज़ की खिड़की के साथ टिकाया और टाँगों को अपनी छाती के साथ

लगाकर कुर्सी पर गठड़ी-सी बन कर, सिराहने से टेक लगाकर, कम्बल ओढ़कर सो गई।

जैसे ही जहाज़ ने इंदिरा गांधी एयरपोर्ट का रनवे छुआ, मनजीत सिंह की आँखों में आँसू आ गये। '30 वर्षों की कैद से छूटकर आ रहा हूँ।' कहते हुए उसने नैपकिन से अपने आँसू पोंछे। मनविंदर खिड़की से बाहर एयरपोर्ट की चहल-पहल देखती रही। कस्टम की औपचारिकता निभाकर जब सरदार मनजीत सिंह एवं बीबी मनविंदर कौर बाहर निकले तो भतीजों ने फतेह बुलाकर स्वागत किया। मनजीत बाग-बाग हो गया... दो भतीजे वैन लेकर आये थे।

दिल्ली से नवाँशहर जाने में पाँच घंटे लगे।

ऊबड़-खाबड़ सड़कों के हिचकोले, चारों ओर उड़ती धूल देख पहली बार मनविंदर बोली-'भारत कितनी भी तरक्की कर ले, सड़कें कभी भी ठीक नहीं होंगी... प्रदूषण तो बढ़ता ही जा रहा है।'

मनजीत ने बीच में ही बात काट दी-'सोनिओ, अपने देश की तो धूल-मिट्टी का भी आनंद है। 30 वर्ष में गोरों की धरती पर मिट्टी का सुख भी नहीं मिला।'

'ताया जी, वहाँ बिल्कुल धूल नहीं होती, कैसे इतनी सफाई रखते हैं?' बड़े भतीजे सुखबीर ने पूछा।

'अमरीका बड़ी प्लानिंग के साथ बना हुआ है। बड़ी-बड़ी इमारतें मिलेंगी या साफ-सुथरी सड़कें, खुली जगह तो बहुत कम देखने को मिलती है। खाली जगह को भी घास और फूलों से भर देते हैं, ताकि धूल न उड़े।'

'पर ताया जी सड़कों की मरम्मत करते समय और इमारतें बनाते समय तो गंद पड़ता होगा, धूल-मिट्टी उड़ती होगी।'

'पुत्तर जी, उनके काम करने के ढंग भी बहुत विचित्र हैं। एक ट्रक फैला-बिखरा सामान उठा ले जाता है और दूसरा ट्रक पानी की टंकी लाता है और सारी जगह धो जाता है।'

सुखबीर आँखें फैलाकर बोला-'हैं, ताया जी फिर तो आप स्वर्ग में रहते हैं।'

'नहीं ओय, स्वर्ग में काले पानी की सज़ा है, सब कुछ ऊपरी, बनावटी और बेरंगी दुनिया है। भावनाएँ, गहराई, सच्चाई और रस तो अपने देश में है।' मनजीत सिंह अपनी मस्ती में बोलता जा रहा था। भतीजे सुन रहे थे और मनविंदर पिछली सीट पर इन सब बातों को अनसुना करते हुए सो गई थी।

घर में प्रवेश करते ही बीजी, दार जी ने आशीर्वादों के साथ दोनों के माथे चूम लिए। ऊपरी मंजिल पर एक कमरा ठीक कर दिया गया था। उनका सामान वहीं टिका दिया गया। जल्दी-जल्दी खाना खिलाया गया। एक बात ने दोनों का ध्यान आकर्षित किया कि रसोई भतीजों की पत्नियों के हवाले थी और उनमें से कोई भी सुघड़ गृहणी जैसा व्यवहार नहीं कर रही थी... सभी काम को निपटाने और जल्दी-जल्दी समेटने में लगी हुई थीं। उनका अधैर्य स्पष्ट नज़र आ रहा था।

आधी रात में मनविंदर पेशाब के लिए जब नीचे गई तो मनजीत भी उसके साथ नीचे आया। ऊपर कोई बाथरूम नहीं था, नई जगह और घना अंधेरा था। वह जानता था मनविंदर अंधेरे से बहुत डरती है। उसने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा-'मेरी रानी, कुछ दिन तकलीफ सह ले, मैं तुझे बहुत बड़ा और अच्छा-सा घर बनवाकर दूँगा। बहुत साल तुमने इंतज़ार किया है।'

मनविंदर कुछ बोली नहीं थी, बस गहरी साँस लेकर चुप हो गई थी।

दूसरे दिन मनजीत तो भाई-भतीजों के साथ खेतों में चला गया। पूरे गाँव और आस-पास की अपनी ज़मीने देखने।

मनविंदर बहुओं के साथ रसोई में जाने लगी तो बीजी ने टोका-'नहीं मन्नी कुछ दिन तां आराम कर लै, करन दे इन्हां नु कम।' बीजी प्यार से मनविंदर को मन्नी कहती थी। 'बीजी मैं खाली नहीं बैठ सकती। साथ काम करवा देती हूँ। जल्दी निपट जायेगा।'

मनविंदर रसोई में गई तो थोड़ी देर बाद सब बहुएँ एक-एक करके वहाँ से खिसक गईं। कोई कपड़े धोने और कोई कपड़े सुखाने के बहाने। मनविंदर अकेली ही रसोई में लगी रही। उसे तो हर तरह के काम की आदत थी। अमेरिका में हलवाई, धोबी, बावर्ची, मेहतरानी वह खुद ही तो थी। उसे हैरानी तो इस बात की हुई कि एक भी देवरानी उसका साथ देने नहीं आई। एक सिर में तेल लगाती रही, दूसरी बीजी के और अपने शरीर की मालिश करती रही। वे उससे बेपरवाह, बेखबर धूप में बैठी, अपना बदन सहलाती रहीं।

सारा कुनबा जब थका-हारा घर लौटा तो मनविंदर ने बड़े प्यार और मुहब्बत से सबको खाना खिलाया।

लक्खी से रहा नहीं गया, कह ही दिया उसने-'भाभी बीजी दी रसोई दी याद आ गई, आप दियां देवरानिया तां निक्कमियां ने, नुआं उन्हां तो वी गईयां गुज़रियां, बीजी तां सब कुछ छड़ के बैठ गए, इन्हांनू अकल कौन दवे?'

'वीरा, ऐसा नहीं कहते घर की औरत को, वह तो लक्ष्मी का स्वरूप है। उसको सम्मान देते हैं, चाहे वह कैसी भी हो।' मनविंदर ने मुस्कराकर कहा।

मुस्कराकर ही तो लक्खी ने पूछा था-'भराजी, किन्ने दिन रहन दा इरादै, कमरा छोटे काके दै। दोनों पति-पत्नी ड्राईंग रूम विच सोंदे ने।'

'हम यहाँ हमेशां के लिए, आप लोगों के साथ रहने, परिवार की धूप-छाँव का आनंद लेने आए हैं।' मनजीत ने अपने दार जी से कहा।

इतना सुनते ही सबके चेहरों के भाव बदल गये। एक बेरुखी-सी झलक आई, उन सबके मुस्कराते चेहरों पर।

'बच्चे तां अमरीका च ने, उन्हां तो बिना तेरा दिल किंज लगेगा?' बीजी ने निर्विकार भाव से कहा।

'बीजी, हर साल हम उन्हें वहाँ मिलने जाएंगे और छुट्टियों में वे यहाँ हमारे पास आएंगे। अमरीका में मैंने आप सब को बेइंतिहा याद किया... यहाँ आने तक आप सबको बहुत मिस करता रहा, माँ आप मेरे दिल में हर समय रही हैं।'

'तीस सालां बाद वी?'

'हाँ माँ, 30 सालां बाद वी। जहाँ मिली रोटी वहाँ बाँधी लंगोटी...अमरीका के इस कल्चर को मैं अपना नहीं पाया। आपको नहीं पता, मैंने वहाँ दिन कैसे काटे?' मनजीत ने वहाँ जीवन कैसे बिताया...किसी ने यह जानने में रुचि नहीं दिखाई।

लक्खी का चेहरा कठोर हो गया-'ज़मीनों पे हक़ जमाने आये हो?'

'हक़ कैसा लक्खी, मैंने ही तो पैसा भेजा था, सारी ज़मीनें हम सब की ही तो हैं। एक टुकड़ा बेचकर, मैं अपना घर बनवा लूँगा ताकि सब आराम से रह सकें।' मनजीत का स्वर दृढ़ था।

बीजी की कड़कती आवाज़ उभरी-'तीस साल पहिलां मेरा पुत्तर मैथों खोह लिया, हुन ज़मीना, ऐ सब तेरे कारनामे ने, मेरा मनजीता इंज दा नहीं, कन्जरिये।'

मनजीत और मनविंदर सन्न रह गये।

सहनशीलता का दामन छोड़ते ही शर्म का पर्दा भी हट गया, मनविंदर भड़क उठी-'पानी वार कर आपने ही कहा था-नुएं संभाल मेरे पुत्तर नूं, तेरे हवाले कीता, इसनूं अमरीका विच पक्का करवा दई। डालरां ने तां पिंड अमीर कर दिते ने, इसदी कमाई साडी वी गरीबी हटा दवेगी।'

'गरीबी तो हट गई पर पैसे की गर्मी ने रिश्ते ठंडे कर दिये। इस उम्र में कुफ़र ना तोलें बीजी, रब्ब से डरें, मनजीत आपका सौतेला बेटा नहीं, आपका हिस्सा है। क्यों आप मुझे गालियाँ देकर मुँह गंदा कर रही हैं। हम कुछ छीनने नहीं आये, बस आपके दिलों में थोड़ी-सी जगह चाहते हैं, सालों से आपके नाम की माला जपने वाला आपका पुत्तर यहीं रहना चाहता है, आपके पास।'

दार जी बिना कुछ कहे उठ गये और उनके साथ ही सब अपने कमरों में चले गये।

कुछ दिन दोनों के लिए बहुत कष्टप्रद रहे। घर में सबने बोलचाल बंद कर दी थी। मनजीत अपने ही घर में अजनबी बन गया था। मनविंदर का गुस्सा उसकी बेबसी देखकर शांत हो गया था। वह उसके लिए चिंतित हो उठी थी। परिवार के प्रति उसकी भावनाएँ मनविंदर से छिपी हुई नहीं थीं। जानती थी कि कितनी शिद्दत से वह अपने परिवार को चाहता है और उनके व्यवहार ने उसे भीतर तक तोड़ दिया था। वे स्वंय ही खाना बनाते, अकेले खाते, सब उनसे कटे-कटे दूर-दूर रहते।

मनजीत अब भी अपने पुराने बीजी, दार जी और भाइयों के सपने लेता। सपना टूटने के बाद करवटें बदलते रात निकाल देता। वर्तमान स्थिति उसे मानसिक तनाव दे रही थी। वह स्वीकार नहीं कर पा रहा था कि माँ-बाप, भाई ऐसे कैसे इतना बदल सकते हैं। ज़मीनों ने रिश्ते बाँट दिये थे, जिन पर सरदार मनजीत सिंह ने सारी उम्र मान किया था। मन और बुद्धि में संघर्ष चल रहा था, कभी मन अर्जुन बन, रिश्तों के भावनात्मक पहलू की दुहाई देता और कभी बुद्धि वासुदेव बन हक की लड़ाई को प्रेरित करती। अगर रिश्ते आँखों पर पट्टी बाँध लें तो उन्हें खोलनी ही पड़ेंगी। उसके अन्दर महाभारत का युद्ध चल रहा था, भावनाएँ पाण्डव बन, कौरव बने रिश्तों का स्वभाव एवं व्यवहार समझ नहीं पा रही थीं, उसका कसूर क्या था? रिश्तों को हद से ज़्यादा चाहना या उस चाहत में सब कुछ भूल जाना और स्वंय को मिटा डालना। संबंधों के लाक्षागृह के जलने से अधिक वह बीजी, दार जी

के बदलते मूल्यों और मान्यताओं से आहत हुआ था।

इसी द्वंद में वह एक रात पानी पीने उठा तो नीचे के कमरे में कुछ हलचल महसूस की, पता नहीं क्यों शक-सा हो गया। दबे पाँव वह नीचे आया, तो दार जी के कमरे से फुसफुसाहट और घुटी-घुटी आवाज़ें आ रहीं थीं।

दोनों भाई दार जी से कह रहे थे-'मनजीते को समझाकर वापिस भेज दो, नहीं तो हम किसी से बात कर चुके हैं, पुलिस से भी साँठ-गाँठ हो चुकी है। केस इस तरह बनाएंगे कि पुरानी रंजिश के चलते, वापिस लौटकर आये एन.आर.आई. का कत्ल। केस इतना कमज़ोर होगा कि जल्दी ही रफ़ा-दफ़ा हो जाएगा। बेशक अमरीका की सरकार भी ढूँढ़ती रहे, कोई सुराग नहीं मिलगा, ऐसी अट्टी-सट्टी की है।'

मनजीत सिंह का सारा शरीर पसीने से भीग गया और वह वहाँ खड़ा नहीं रह सका। शरीर की सारी ऊर्जा कहीं लुप्त हो, बदन को ठंडा कर गई। चलने की हिम्मत नहीं रह गई थी अपने आप को घसीटता हुआ वह कमरे में लौटा और बिस्तर पर धड़ाम से गिर गया। मनविंदर की नींद टूट गई, वह उसके काँपते शरीर और चेहरे का उड़ा रंग देखकर बहुत घबरा गई। मनजीत ने बाईं ओर अपने दिल पर हाथ रखा हुआ था।

'सरदार जी दर्द हो रहा है तो डॉक्टर को...।' मनविंदर ने अपनी बात अभी पूरी भी नहीं की थी कि मनजीत ने उसका हाथ अपने सीने पर रख लिया-'दर्द नहीं, दिल टूटा है, अपनों ने तोड़ा है। टूटे दिल के टुकड़े संभाल नहीं पा रहा हूँ। तेरी बातों को अनसुना कर मैं सारी उम्र तुझे पराई समझता रहा और अब अन्दर तड़पन है, जो सुनकर आया हूँ, क्या वह सच है? जान नहीं पा रहा हूँ कि कौन-सी ज़मीन अपनी है?'

मनविंदर ने अपनी उंगली मनजीत के होंठों पर रखकर उसे चुप करा दिया। वह बहुत कुछ समझ गई थी और उछलकर बिस्तर से नीचे उतरी। सौष्ठव देहयष्टि वाली मनविंदर ने मनजीत को बाँहों में भर कर उसे उठने में मदद कर, अपना पर्स उठाया और आधी रात में ही दोनों पिछले दरवाजे से निकल गये। उनके पाँव के नीचे वही ज़मीन थी, जिसके लिए मनजीत उम्रभर डॉलर भेजता रहा।

चारों तरफ गहरा काला अंधेरा था।

-डॉ.सुधा ओम ढींगरा
अमेरिका
sudhaom9@gmail.com

रणनीति

चिक उठाकर वह अंदर आया तो थोड़ा घबराया हुआ था। हाथ में ट्राँसफर ऑर्डर था। पता नहीं हैड ज्वाइन भी करवाता है कि नहीं।

आर्डर पढ़कर हैड की आँखें फैल गयीं-'बहुत पहुँच रखते हो, नहीं?'

'आप जानते ही हैं सर, इसके बिना आजकल कोई पूछता नहीं।'

'तबादले तो बंद हैं। ज़रूर कोई खास आदमी होगा डायरेक्टोरेट में?'

'जी हाँ सर।' अब वह स्वस्थ अनुभव कर रहा था।

'हमारा तो कोई काम होता नहीं। पता नहीं तुम लोग कैसे..?'

'आप बेफिक्र रहें सर। जिस मिनिस्टर से चाहेंगे कान से पकड़ कर..।'

'शट अप! गेट-आउट!' हैड ने ट्राँसफर आर्डर के दो टुकड़े कर दिए। 'कह देना अपने मिनिस्टर बाप को, कोई जगह खाली नहीं है यहाँ।'

वह भौंचक रह गया। बोलने को हुआ तो जीभ लड़खड़ा गयी।

'चलो भागते दिखो, मिनिस्टर की दुम!'

'सॉरी सर, बड़ी मुश्किल से....पता नहीं अब मिलेगा भी कि नही.. प्लीज सर, ऐसा न करें प्लीज़..।'

'अब आये न रास्ते पर। जाओ बाबू को पहुँच रिर्पोट दे दो।'

मुर्झाया हुआ वह बाहर निकला तो मैंने कहा-'सर, अगर वह मिनिस्टर का खास आदमी होता..?'

'तब क्या था? गुस्से में भरा जैसे ही बाहर निकलता, मैं लपक कर उसे मना लाता।'

-डॉ.सुरेन्द्र मंथन
1164, बसंत एवन्यू,
दुगरी रोड़, लुधियाना

औपचारिक घोषणा

पड़ोस के घर से सुबह-सुबह रोने की आवाजें आने लगीं। यह समझने में देर न लगी कि वृद्ध व विकलांग माँ ने अंतिम साँस ले ली। यह बात सच भी थी। वृद्ध माँ से बहुएँ तंग आ चुकी थीं। शायद उसकी अंतिम साँस लेने की राह देख रही थीं।

वृद्ध माँ मुश्किल से वॉकर से चल पातीं तो थोड़ा आकाश देख पातीं, थोड़ी धूप सेंक लेतीं। दोनों बहुओं को ज्यादा बोझ न लगे, इसलिये स्वैटर बुन कर कुछ पैसे कमा लेतीं। इसके बावजूद पड़ोस से वृद्ध माँ को कौन रखे, इस पर चख-चख सुनाई देती रहती। माँ दोनों बेटों को टुकुर-टुकुर निहारती, आँसू बहाती रहती।

अभी पड़ोस के घर से रोने की आवाजें आ रही हैं। मुझे लगता है कि वृद्ध माँ के मरने की यह औपचारिक घोषणा मात्र है। माँ तो शायद कुछ वर्ष पहले ही गुजर चुकी थी।

-कमलेश भारतीय

उपाध्यक्ष, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला

अनाथ

रातों रात शहर में सांप्रदायिक दंगा फैल गया था। कई दिन तक यह चलता रहा। लाशें ऐसे गिरती मानो विकेट गिर रहे हों। हर सम्प्रदाय के नेता दूसरे को नीचा दिखाने में लगे रहे।

किसी तरह मामला शांत हुआ तो जाँच पर बात आकर अटकी। लाशों पर राजनीति भारी पड़ रही थी। दोनों पक्ष के लोगों ने अपनी बात रखी और मरने वालों हेतु मुआवजे की माँग की।

एक पक्ष के 17 लोग मरे थे तो दूसरे पक्ष के 13 लोग, पर अभी भी एक का अंतर दिख रहा था। दोनों पक्ष के लोग हैरान कि यह कौन शख़्स हो सकता है?

दोनों पक्षों ने लाश देखी तो वह अनाथ बालक था, जो घूम-घूम कर गुब्बारे बेचता था। अब दोनों पक्षों के लोग आपस में निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि उस अनाथ को हिन्दू माना जाय या मुसलमान? सरकारी अधिकारी अपनी आँकड़ेबाज़ी दुरूस्त करने में लगे थे।

हिंदू या मुसलमान के निर्णय में उस अनाथ बालक की आत्मा अभी भी भटक रही थी।

-आकांक्षा यादव

टाइप 5, निदेशक बंगला, जी.पी.ओ. कैम्पस,
सिविल लाइन्स, इलाहाबाद

दोहराव

अपने पिता दीनानाथ से अपने दिल का दर्द बांटते हुए रेखा कहती रही-'पिताजी मुझे तो अचानक यह पता चला कि मेरी बेटी बड़ी हो गई है।'

'हाँ बेटी यह आभास तो अचानक ही होता है।'

'और देखिये न पिताजी, आपकी नातिन प्यार में इतनी पागल हो गई कि अपने सभी पुराने रिश्ते, मेरी ममता को, घर की मर्यादा के सारे बंधन तोड़कर चौखट लांघकर बस चली गई।' कहते हुए रेखा ज़ोर-ज़ोर से रो पड़ी... !

'बेटे प्यार में ऐसा ही होता है। तीस साल पहले मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ, मैं भी इस दौर से गुज़र चुका हूँ, जब तुम बिन बताए अपने उस दोस्त के साथ हमें छोड़कर चली गई थी।' पिता ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा।

इतिहास खुद को दोहराने से बाज़ नहीं आता, यहाँ तक तो बात समझ में आती है, पर यह बात समझ नहीं आई कि दीनानाथ जी अपनी बेटी के ताज़े ज़ख़्म पर मरहम रख रहे थे या अपने पुराने ज़ख्म सहला रहे थे... ?

उद्देश्य और आदेश

पिता के गुज़र जाने की खबर सुनकर बेटा विदेश से भारत आया और विधि अनुसार पिता के अंतिम-संस्कार संपूर्णता से अर्जित किए। पंद्रह दिन के बाद विदेश लौटते वक़्त उसने माँ के पाँव छूते हुए विदा ली, यह कहते हुए कि वह पिता की पुण्य-तिथि के लिए एक साल के बाद लौट आएगा और तब तक वह मास मच्छी नहीं खाएगा।

समय बीता, ग्यारह महीने होने को आए। फ़ोन पर बात करते हुए एक दिन माँ ने कहा-'बेटा अब मेरी भी उम्र ढल रही है, जाने कब जीवन की आख़िरी शाम ... !'

'माँ ऐसा बिलकुल मत कहो।' बेटे ने बीच में ही बात काटते हुए कहा।

'यह तो मुझ पर जुल्म होगा। अभी तो पिता को एक वर्ष पूरा होने को है। मैं जैसे तैसे घास फूस पर गुज़ारा कर रहा हूँ। अगर कुछ ऐसा वैसा हुआ तो फिर मैं तो मर जाऊंगा। तुम तो अब कुछ साल रुक जाओ।'

-देवी नागरानी

9-डी, कॉर्नर व्यू सोसाइटी, 15/ 33 रोड,
बांद्रा, मुंबई 400050 फोन-9987938358

पतन

भोपाल जाने के लिए बस पकड़ी और आगे की सीट पर सामान रखा ही था कि किसी के जोर-जोर से रोने की आवाज आई, मुड़कर देखा तो एक भद्र महिला छाती पीट-पीटकर रो रही थी।

'मेरा बच्चा मर गया..., हाय क्या करूँ..., कफ़न के लिए भी पैसे नहीं हैं.., मदद करो बाबूजी, कोई तो मेरी मदद करो। मेरा बच्चा ऐसे ही पड़ा है घर पर..., हाय मैं क्या करूँ।'

उसका करूण रुदन सभी के दिल को बेचैन कर रहा था, सभी यात्रियों ने पैसे जमा करके उसे दिए।

'बाई जो हो गया उसे नहीं बदल सकते, धीरज रखो।'

'हाँ बाबू जी, भगवान आप सबका भला करे, आपने एक दुखियारी की मदद की।'

ऐसा कहकर वह वहाँ से चली गयी।

मुझसे रहा नहीं गया, मैंने सोचा कुछ और पैसे देकर मदद कर देती हूँ, ऐसे समय तो किसी के काम आना ही चाहिए। जल्दी से पर्स लिया और उस दिशा में भागी जिधर वह महिला गयी थी। पर जैसे ही बस के पीछे की दीवार के पास पहुँची तो कदम वहीं रुक गए।

एक मैली-सी चादर पर एक 6-7 साल का बालक बैठा था और कुछ खा रहा था। उस भद्र महिला ने पहले अपने आँसू पोंछे, बच्चे को प्यारी-सी मुस्कान के साथ बलैयां ली, फिर सारे पैसे गिने और अपनी पोटली को कमर में खोसा और बच्चे से बोली-'अभी आती हूँ यहीं बैठना, कहीं नहीं जाना।'

और पुन: उसी रुदन के साथ दूसरी बस में चढ़ गयी।

मैं अवाक सी देखती रह गयी।

-शशि पुरवार
पी-4 ,2/1, सरकारी निवास
सागर पार्क के सामने, कोजी कॉटेज के बाजु में
महाबल रोड, जलगाँव (महाराष्ट्र)-425001
09420519803

चोट

माघ माह की ठिठुरन भरी सर्दी से जूझती एक मजदूरिन घुटनों में सिर खोंस कर बैठी हुई थी। आती टैम्पो की आवाज़ उसके कानों में पड़ी। वह रोटी का थैला हाथ में लटका कर खड़ी हो गई थी। टैम्पो के रुकते ही वह उसमें आकर बैठ गई थी। दुबलाई देह। बुड़ियाए हड़ैल चेहरे पर शाश्वत चिंता। मैले-कुचैले कपड़े और नंगे पैर। गरीबी की गठरी-सी वह वही मजदूरिन थी, जो हमारा मकान बनते समय महीनों काम पर खटती रही थी। उसने मुझे पहचान लिया था। मिलन का यह अप्रत्याशित संयोग पाकर वह अभिभूत हो गई। उसने जुड़े हाथों-''बाबू जी'' कहकर मुझे नमस्कार किया था। अप्रतिम स्नेह, स्निग्ध वात्सल्य, मिट्टी की गंध-सा अपनापन।

हम दोनों टैम्पो में पास बैठे थे। उसने मेरे नजदीक सरक कर आत्मीयता से दो-तीन बार 'बाबूजी, बाबूजी' कह कर मुझे सम्बोधित किया।

नि:संदेह वह मेरे से बतियाने की ढेर सारी जिज्ञासाएँ मन में लिए थी। बच्चे, बीवी, नये घर का सुख और मेरी नौकरी।

एकाएक मेरा अंतस फुंफकार उठा। अगर इस मजदूरिन से मुँहजोरी की, इसके किराये की चोट मुझ पर ही पड़ेगी। मैंने होंठों पर उंगली रख ली और उससे मुँह फेरकर बैठा रहा, निष्ठुर-सा। मजदूरिन स्टैण्ड पर उतर गई थी।

मेरा स्टैण्ड आ गया था। मैंने अपने किराये के दो रूपये कण्डक्टर की ओर बढ़ाये। कण्डक्टर ने गर्दन हिलाकर कहा-'रहने दीजिएगा बाबू साब, आपका किराया तो वह मजदूरिन दे गई।'

-रत्नकुमार साँभरिया
भाड़ावास हाउस, सी-137
महेश नगर, जयपुर

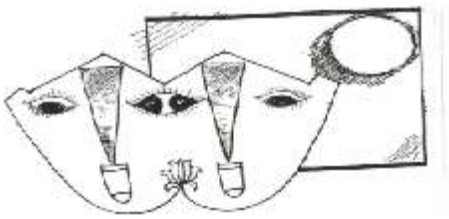

पुस्तक समीक्षा

हरियाणवी सतसई लेखन की एक अनूठी 'मसाल'

संस्कृत तथा हिंदी साहित्य में सप्तशती लेखन की परम्परा बेहद प्राचीन है। इस लेखन यात्रा में हरियाणवी के रचनाकारों ने भी अनूठा योगदान दिया है। समीक्ष्य कृति 'मसाल' वरिष्ठ रचनाकार हरिकृष्ण द्विवेदी की तीसरी हरियाणवी सतसई है। इस कृति में भी उन्होंने बहुआयामी जीवन पक्षों पर दोहों के माध्यम से छाप छोड़ी है।

श्री द्विवेदी ने 712 दोहों में जीवन के हर रंगरूप को लोक अनुभव की तराजू पर तोलकर जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया है। जीवन-मरण, खेत-खलिहान, घर-बाहर, रिश्ते-नाते, माँ-बहनें, अपनापन-भाईचारा, कथनी-करनी, गांव-नगर, प्रकृति-प्रदूषण, संस्कृति-विकृति, रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, ज्ञान-विज्ञान, किसान-मजदूर, दिखावा-छिपावा, पाप-पुण्य, लोभ-लालच, जाति-धर्म, एकता-अखण्डता जैसे बहुआयामी विषयों पर बहुरंगे चित्र मिलकर 'मसाल' के रूप में खड़े हैं।

इस कृति की भूमिका में डॉ. बाबूराम ने ठीक ही लिखा है कि कवि का लोक भाषा पर जबरदस्त अधिकार है तथा 'मसाल' सतसई परम्परा लेखन के लिए प्रकाश पुंज सिद्ध होगी। रचनाकार ने दोहाछंद के महत्व को रेखांकित करते हुए स्वयं लिखा है-

दोह्यां म्हं आक्खर नहीं, साच्चे मोती जाण।
तुलसी वृन्द कबीर जी, ल्याए सागर छाण।।

योगेश्वर श्रीकृष्ण के निष्काम कर्मयोग को रचनाकार ने सरल भाषा में अभिव्यक्त करते हुए मोक्षप्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया है-

करमयोग का अरथ सै, काम करो निसकाम।
पाप पुन्न लाग्गै नहीं, मिल ज्या मुकती धाम।।

सतसईकार श्री द्विवेदी के अनेक दोहों में ऐतिहासिक प्रसंगों को रोचकता से शामिल किया गया है-दो बानगी देखिए-

भुन्ने तित्तर भी उडैं, जिसका रुस्सै राम।
खुंटी निगलै़ हार नै, गांडिव करै न काम।।

फुक्कै अगनी पाप की, मिटैं बंस के बंस।
त्रेता म्हं रावण गया, अर द्वापर म्हं कंस।।

रचनाकार के अनेक दोहों में व्यंग्य बाण भी खूब जमे हैं-

प्यार भरी गोदी गई, अमरत बरगा दूध।
माँ ने ब्यूटी मार ग्यी, ना बाल़क की सूध।।

अपने लोक अनुभव के आधार पर रचनाकार ने मानव प्रकृति का निष्कर्ष कुछ यूँ बयां किया है-

मरूं मरूं दुख म्हं करै, सुख म्हं करै मरोड़।
इस माणस की जात का, काढ्या मनै नचोड़।।

अच्छी हरियाणवी कैसे लिखी जाए- यह हरियाणवी मर्मज्ञ हरिकृष्ण द्विवेदी को पढ़कर बखूबी सीखा जा सकता है। रचनाकार ने गूढ़ हरियाणवी शब्दों का हिंदी में अर्थ देकर कृति को व्यापकता प्रदान की है। संग्रह की भाषा सरल व सहज है। एक सौ उन्नीस पृष्ठ वाली इस पुस्तक की कीमत डेढ़ सौ रूपये उचित है। प्रासंगिक कलात्मक आवरण प्रभाव छोड़ता है। कुल मिलाकर यह कृति विलुप्त होती दुर्लभ हरियाणवी शब्दावली, लोक कहावतों तथा लोक परम्पराओं के संरक्षण एवं संवर्द्धन में मील का पत्थर साबित होगी, हरियाणवी दोहा सतसई लेखन के क्षेत्र में मसाल बनकर मिसाल कायम करेगी तथा दोहा छंद के लिए हरियाणवी कबीर वाणी सिद्ध होगी- ऐसी आशा है।

पुस्तक-मसाल (हरियाणवी दोहा सतसई)
लेखक : हरिकृष्ण द्विवेदी
प्रकाशक : लता साहित्य सदन गाजियाबाद
पृष्ठ-119 मूल्य-150 रु.

-सत्यवीर नाहड़िया
257, सेक्टर-1, रेवाड़ी
9416711141

प्रकृति और संस्कृति से जोड़ती कविताएँ

साहित्य की विधा चाहे कोई भी हो, उसे तब तक दोहराते रहना चाहिए जब तक नई पीढ़ी यह न जान-समझ ले कि साहित्य केवल मनोरंजन या बौद्धिक कसरत नहीं है बल्कि साहित्य वह साधन है जो संवेदना को शब्द देता है, आलोचना को जागरूक करता है और हमारे अंदर के सर्वोत्तम को संजोये रखता है। यह साहित्य ही है जो हमें विकृति से दूर ले जाकर प्रकृति व संस्कृति से जोड़ता है।

प्रकृति व संस्कृति से जोड़ने वाला ऐसा ही काव्य संग्रह दुनिया भर की गिलहरियाँ प्रख्यात शिक्षाविद व साहित्यकार डॉ.रूप देवगुण की लेखनी से निसृत हुआ है। अकादमी के अनुदान से प्रकाशित इस संग्रह में 46 कविताएँ समाहित हैं।

इन कविताओं में कवि की कल्पना और अनुभव सामाजिक रास्तों से होकर गुजरे हैं। इसलिए काव्य प्रभावी बन पड़ा है। रचनाएँ अतुकांत हैं पर समर्थ हैं क्योंकि इनमें काव्यत्व है। गिलहरियाँ प्रतीक हैं प्यारी-प्यारी बच्चियों की जो घर आँगन की शान हैं, जिनके मासूमियत भरे क्रियाकलाप आनंद का संचार करते हैं। कवि ने घर-परिवार का जीवन्त चित्रण किया है, जिसमें पिता की गर्जन का भय है तो माँ की ममता व संवेदनशीलता का सुकूँ भरा वातावरण भी है। 'उस पर वसंत अब' में पेड़ त्यागी व्यक्ति का प्रतीक है इसलिए उसे संतोष है कि बहार फिर आयेगी, जबकि पेड़ के नीचे बैठा व्यक्ति उस जन का प्रतीक है जिसने कभी किसी को कुछ नहीं दिया होगा, इसलिए अंदेशा है कि उस पर वसंत कभी नहीं आयेगी।

प्रकृति के अंग-संग, रची-बसी कविताओं में बादल, बिजली, बारिश, बहते झरने, चीड़ के वन, बदलता मौसम, पक्षी आदि वाह के नगमें गाते हैं। वहीं घर में बड़ों की गर्जन-तर्जन से बच्चे अकुलाते हैं। घोसलों से पक्षी-शावकों का उड़कर दूर जाना, तिनकों का बिखरना और केवल दो पक्षियों का रह जाना प्रतीक है-टूटते-उजड़ते परिवारों का, बुजुर्गों की उपेक्षा का और वृद्धावस्था की टीस का।

इन कविताओं में भाषा की सरलता, प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता व शब्दों की सरलता समाई है। आत्मकथात्मक शैली में लिखी ये रचनाएँ कोरी कल्पना की उड़ान नहीं भरती। उपमा, रूपक, अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश आदि अलंकारों का आवश्यकतानुसार प्रयोग है। कागज स्तरीय, त्रुटिहीन छपाई और मुँह बोलता-सा आवरण है। संग्रह में कहीं-कहीं मूल कथ्य की पुनरावृति है, इससे बचा जा सकता था। पृष्ठ 45 पर खुशबू के विशेषण के रूप में भयावह शब्द असंगत है। कविताओं में अंतिम वाक्य के अतिरिक्त कहीं भी विराम चिह्नों का न होना अखरता है।

कुल मिलाकर भाषा, भाव-विचार का दमखम रखने वाली इस कृति का साहित्य जगत में स्वगत होगा, ऐसी उम्मीद है।

पुस्तक-दुनिया भर की गिलहरियाँ
लेखक-डॉ.रूप देवगुण
प्रकाशक-अक्षरधाम प्रकाशन, कैथल,
पृष्ठ संख्या-80 मूल्य-रुपये 150

-कृष्णलता यादव

बाबूजी का भारतमित्र (अर्द्धवार्षिक पत्रिका)

(फार्म नं. 4, नियम 8 के अनुसार स्वामित्व सम्बन्धी विवरण)

समाचार-पत्र का नाम	: बाबूजी का भारतमित्र
प्रकाशन अवधि	: अर्द्धवार्षिक
भाषा जिसमें प्रकाशित होती है	: हिन्दी
प्रकाशक का नाम व स्थान	: रघुविन्द्र यादव प्रकृति-भवन नीरपुर, नारनौल (हरियाणा)
सम्पादक का नाम	: रघुविन्द्र यादव
नागरिकता व पता	: भारतीय प्रकृति-भवन नीरपुर, नारनौल (हरियाणा)
मुद्रक	: दिशांक ऑफसैट एवं प्रिंटिंग प्रैस, चाँदूवाड़ा नारनौल (हरियाणा)
कुल पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों के नाम व पते	: रघुविन्द्र यादव प्रकृति-भवन नीरपुर, नारनौल (हरियाणा)

मैं, रघुविन्द्र यादव एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

रघुविन्द्र यादव (सम्पादक-प्रकाशक)

गीत के गरुड़ की उड़ान

समकालीन गीति-काव्य सर्जना के स्वर्णिम हस्ताक्षर कविवर चन्द्रसेन विराट के अभिनव गीत संकलन की संज्ञा है 'ओ गीत के गरुड़'। इस कृति के समर्पण की पंक्तियाँ रचनाकार की गीतव्रती लेखनी के अन्तर्व्यक्तित्व को प्रकट करती हैं-मूलत: छंद में ही लिखने वाली उन सभी सृजनाधर्मा, सामवेदी सामगान के संस्कार ग्रहण कर चुकी गीत-लेखनियों को जो मात्रिक एवं वर्णिक छंदों में, भाषा की परिनिष्ठता, शुद्ध लय एवं सांगितिकता को साधते हुए, रसदशा में रमते हुए, अधुनातन मनुष्य के मन के लालित्य एवं राग का रक्षण करते हुए, आज भी रचनारत हैं। ...हमारी पौराणिक मान्यता है कि भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ के उड़ते समय उसके पंखों से सामवेद के मंत्रों की रागमयी ध्वनि हुआ करती थी। विविध रूपकों में शब्द को गरुड़ माना गया है जो सुपर्ण अर्थात सुन्दर पंखों वाला है, जिसमें अप्रतिम सामर्थ्य है और जो माँ के स्वाभिमान की रक्षा के लिए अमरावती से अमृत-कलश लाने की शक्ति से सम्पन्न है।

कविवर विराट ने गीत को गरुड़ के रूप में देखा है-

यह गरुड़-सा उड़ा है
हृदयों तरफ मुड़ा है
अर्थों का सतपुड़ा है
संस्कारों से जुड़ा है
रवि भी जहाँ न जाता, मैं नित्य जा रहा हूँ
ब्रह्मण्ड बिना वाहन सबको घुमा रहा हूँ
मैं गीत गा रहा हूँ

कवि की दृष्टि में शिव सत्य से स्फुरित गीत ही साहित्य का वास्तविक चरित है और वह गढ़ा नहीं जाता, अवतरित होता है। उसकी श्रद्धान्वित साधना, अव्याहत उपासना रचनाकार को सहस्त्रार तक पहुँचाकर वह भाव-समाधि प्रदान कर देती है जो अष्टांग-योग के साधकों के लिए भी स्पृहणीय है-

अध्यात्म का रसायन
खोले तृतीय लोचन
स्थिति हो तुरीय पावन
हो सप्त-चक्र दर्शन
है सुप्त कुण्डली जो उसको जगा रहा हूँ
मैं सहस्त्रार तक की यात्रा करा रहा हूँ

गीत के प्रति, गीतकार के प्रति और गीतात्मकता के प्रति विराट जी की अविचल आस्था है। अपारे कविरेव प्रजापति: की सनातन मान्यता को जीते हुए, कविर्मनीषीपरिभूसवयंभू की उपनिसद् सूक्ति की प्रामाणिकता के प्रति श्रद्धान्वित वह निभ्रन्ति स्वर में घोषणा कर पाते हैं-

कवि ब्रह्म शब्दों का रहा उसकी सामान्तर सृष्टि है,
जो पार देखे ठोस के ऐसी रचयिता दृष्टि है
ऋषि वाक्य है संतोष कर यह कवि वचन है आप्त है
रे मन न कर परिवाद तू जो कुछ मिला पर्याप्त है।

वैयक्तिकता, सघनता जैसी विशेषताओं के साथ विराट जी के गीतों में सामाजिक संवेदना भी पर्याप्त मुखर है। इस संकलन के बहुत से गीत व्यंग्य प्रधान हैं, कुछ सीधे-सीधे राष्ट्रभाषा, देवनागरी, वन्देमातरम् के जय-घोष से जुड़े हैं तो कुछ में समय के टेढ़े तेवरों और राजनीति के दंशों को जी रहे जनसामान्य की व्यथा-कथा है। कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

विक्षुब्ध है दुखी है, हर कष्ट चौमुखी है
परिवाद होठों पर है, पर आँख में नमी है-
वह आम आदमी है।
एक ओर बानगी-
युद्ध अवश्य किसी के द्वारा
जीता या हारा जाएगा
मैं ही हूँ वह आदमी
जो इसमें मारा जाएगा

कवि अपने अवसादों से ऊपर उठकर गीत के गरुड़ की यात्रा को अविराम रखे, प्रभु से यही प्रार्थना है।

पुस्तक-ओ गीत के गरुड़
कवि-चन्द्रसेन विराट
प्रकाशक-समान्तर प्रकाशन, तराना
पृष्ठ-160 मूल्य-250 रु.

-डॉ.शिव ओम अम्बर
4/10, नुनहाई, फर्रुख़ाबाद

नये तेवर की कविताएँ हैं 'उगती प्यास दिवंगत पानी'

आज बहुआयामी रचनाधर्मिता के दौर में लेखन व प्रकाशन के क्षेत्र में भी नित नये प्रयोग हो रहे हैं। समीक्ष्य कृति इसी पहलू का एक संजीदा उदाहरण है, जिसमें साठ वर्षीय रचनाकार प्रबोध कुमार गोविल की 27 कविताओं के साथ बीस वर्षीय नवोदित कवि मंटू कुमार की 23 कविताएँ मर्मस्पर्शी शीर्षक 'उगती प्यास दिवंगत पानी' के अंतर्गत छपी हैं। गोविल जी ने इन दो पक्षों की रचनाधर्मिता को रेखांकित करते हुए ठीक की कहा है- 'जैसे आधी सदी के दो छोर एक साथ हुक्का पी रहे हों....।'

राही सहयोग संस्थान, निवाई (राजस्थान) की साहित्य श्रृंखला शब्द पराग भाग-7 के रूप में प्रकाशित इन पचास कविताओं में सूक्ष्म मानवीय संवेदनाओं के बहुमुखी चित्र मुखरित हुए हैं- जिनमें कहीं जोशीला साहस है तो कहीं व्यंग्यभरी चुटकियाँ हैं। गोविल जी एक रचना देखिए-

इस पानी में दर्द घुले हैं, इन पानी में प्यास घुली है।
इससे वाबस्ता हैं रिश्ते, इस पानी में आस घुली है।।

मौलिकता से लबरेज शिल्प सौष्ठव एवं भाषायी प्रवाह के चलते संग्रह में छंद की कमी महसूस नहीं होती। नवोदित कवि मंटू कुमार की रचनाएं भी प्रभाव छोड़ती हैं-

आम लोगों में बात खास उगी।
संगमरमर के बीच घास उगी।।

सजातीय गौत्र की इस रचनाधर्मिता में कथ्य, शिल्प, प्रस्तुति तथा भाषाशैली में ग़ज़ब की समानता है तथा संग्रह में सामाजिक सरोकारों की सपाट बयानी की बजाये उनके पीछे छिपे मूलतत्व को प्रमुखता से मुखरित किया गया है। कृति के शीर्षक व आवरण में अनूठेपन का अहसास होता है। साठ पृष्ठों वाले इस संग्रह में अनेक पृष्ठों पर खाली स्थान अखरते हैं। रचनाकारों का परिचय भी कृति के साथ होता तो बेहतर होता। मानसपटल पर छाप छोड़ते हुए सीधे दिलों में उतरने की क्षमता रखने वाली इन कविताओं के नये तेवर इनकी विशेषता है जिसके चलते इनकी खनक व दमक दूर तक जाएगी- ऐसी आशा है। **-सत्यवीर नाहड़िया**

257/1, रेवाड़ी

अनोखी कविताओं का संग्रह : तुम कबीर न बनना

अर्से के बाद कभी कोई ऐसी पुस्तक पढ़ने को मिलती है जिसे एक बार पढ़ना शुरू करें तो अंत तक लगातार पढ़ते जाना ज़रूरी हो जाता है। हरिभजन सिंह रेणु जी की पंजाबी कविताओं का हिन्दी अनुवाद ''तुम कबीर न बनना'' उस श्रेणी में शामिल की जा सकती है, जिस का अनुवाद गीतांजलि जी ने बहुत ही उत्तम किया है, रेणु जी की कवितायें न केवल सोचने को विवश करती हैं बल्कि पाठक को आंदोलित कर भीतर तक झकझोर देती हैं। इस पुस्तक को पढ़ कर अनुभूति हुई है कि जो व्यक्ति देखने पर शान्त समंदर सा नज़र आता था उसके भीतर कितने ही तूफान छिपे हुए थे, हम उन्हें जानने वाले भी उनकी गहराई को कहाँ भाँप सके थे कभी। 'मेरे साथ चलो' पहली ही कविता स्पष्ट कर देती है कि कवि अकेला अपनी राह चलने वाला है मगर उन सब के साथ चलने को तैयार है जिन्हें अंधेरे को चीर कर जाना हो। एवम् जिनको जाना ही अंधेरे की ओर हो उनका कवि से भला क्या तालमेल हो सकता है। 'डाकघर कोई नहीं' कविता एक कटु सत्य को उजागर करती है जो आये दिन दो देशों को शत्रुता छोड़ दोस्ती करने के नाम पर होने वाले झूठे दिखावे को निरर्थक बता कर सही दिशा की बात करते हुए अंत में कहती है ''फिर लाहौर दिल्ली जब इक दूजे को, लिखें चिट्ठी, तो पता लिखें, दिल खास, दिल खास, गांव आम, डाकघर कोई नहीं, थाने बंद, राहें तमाम।'' 'जड़ता' कविता में हमारे समाज की जड़ता देख व्याकुल कवि को लगता है जैसे किसी दानव के कहर से हमारी सभ्यता पथरा गई है और पूछती है कि कब तक हम ऐसे ही बने रहेंगे श्रापित और बेजान एक थमे हुए समय की कैद में। कवि रेणु कभी रंगकर्मी गुरशरण सिंह से बातें करता है, भगत सिंह, सफदर हाशमी और पाश के बारे में और बताता है कि कौन चलता है ऐसे लोगों के साथ। मगर कलम का कर्त्तव्य है अपने रक्त से प्राण लेकर हालात से जूझते रहना। 'कहा था न', कविता में रेणु बताता है अंजाम कबीर जैसा बनने का प्रयास करने का तो सुकरात से मिलने जाना है कविता में हक सच की बात करने वाले का सामना कैसे अपने ही सत्य से होता है, कैसे सवाल जवाब होते हैं की बात कहने के बाद कवि छोड़ जाता

है एक प्रश्न कि कैसे मिटेगा अज्ञानता का अंधकार। मैं बौना नहीं कविता बहुत ही कम शब्दों में सभी कुछ कह देती है। कवि रेणु स्वीकार करता है कि भले मैं छोटा लगता हूँ, मगर मेरे अंदर बहुत गहरा समंदर है। मुझे न तो ठंडी छाँव भाती है न ही सर्द मौसम। मुझे तो ज़रूरत है धरती की गोद जैसी गरमाहट या फिर तुम्हारे अत्याचार की धूप। मैं बौना नहीं। अत्याचार से टकराने को व्याकुल है कवि रेणु और वास्तव में जीवन भर टकराता ही रहा है। विरले ही होते हैं जिनका लेखन भी वैसा ही हो जैसा उनका जीवन रहा हो। यहां पर मुझे श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में गुरु नानक जी के कहे शब्द अनायास याद आते हैं-''सचहु ओरे सभु कोई, ऊपर सच आचार।'' अर्थात सत्य महान् है किन्तु सत्याचरण महान्तर है। कवि रेणु का साक्षात्कार अपने ही दूसरे पक्ष से भी होता है जब 'लड़की गाती रहेगी' कविता में स्वीकार करता है कि मेरे अंदर की जमी बर्फ को मेरे ही शब्द पिघला नहीं सके। लड़की आज भी गा रही है...पर मैं और तुम कोई कायर नहीं। 'तुम कबीर न बनना' कविता जैसे कबीर की जीवनी प्रस्तुत कर बताती है कि आसान नहीं है कबीर बनना। जैसे दुष्यंत कुमार कहते हैं कि तुमने मुझे मसीहा बना दिया है अब मैं शिकायत भी नहीं कर सकता। रेणु भी बताते हैं कि जब लोग उनसे कबीर बनने की बात कह रहे थे तब उनके भीतर बैठा कबीर उन्हें चेता रहा था कि तुम मत बनना मुझ जैसा वर्ना जानते ही हो क्या हाल हुआ था मेरा। और अंत में उनके भीतर से उनका मन जवाब देता है कि कबीर को भी किसी ने कहा नहीं था कबीर बनने को, मगर उन्हें बनना था सो बन गये कबीर। इनके अलावा भी पुस्तक की अन्य कविताएँ अपने आप में जाने क्या क्या समाये, छुपाये हैं। शायद, शहीद बनाम हम, रूबरू, दावानल, लोग, प्रतिकर्म, अनकहे शब्दों की हूक, मिलने के बाद, इंतज़ार मेरे पूर्वज, जब नींद नहीं आती, आओ कि हम, तमाम कवितायें एक यत्न करना चाहती हैं। एक नया युग रचने का प्रयास करती प्रतीत होती है।

-डॉ. लोक सेतिया

पुस्तक: तुम कबीर न बनना
लेखक: हरिभजन सिंह रेणु
अनुवाद: गीतांजलि

एस.सी.एफ-30, माडल टाउन,
फतेहाबाद (हरियाणा)- 125050

कुण्डलिया छंद को समृद्ध करता संकलन

कुण्डलिया भारतीय कविता का लोकप्रिय छंद रहा है। छह चरणों में लिखे जाने वाले इस छंद के प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं। यह वास्तव में दोहा और रोला दो छंदों के संयोग से बना है। इसके प्रथम दो चरण दोहा तथा शेष चार चरण रोला से बने हैं। दोहा के विषम चरणों में 13-13 तथा सम चरणों में 11-11 मात्राएँ होती हैं। रोला में भी कुल मात्राएँ तो 24 ही होती हैं, मगर दोहे के विपरीत इसका प्रथम चरण 11 और द्वितीय चरण 13 मात्राओं का होता है। इसी कारण कुण्डलिया छंद में दूसरे चरण का उत्तरार्ध तीसरे चरण का पूर्वार्ध बनता है।

कुण्डलिया छंद की विशेष बात यह है कि इसका प्रारम्भ जिस शब्द या शब्द समूह से होता है, अंत भी उसी शब्द या शब्द समूह से होता है। जिस तरह दोहे के अंत में गुरु लघु होना आवश्यक है, उसी प्रकार रोला के अंत में चार लघु या दो गुरु या एक गुरु दो लघु अथवा दो लघु एक गुरु आना अनिवार्य है।

जिस प्रकार कबीर, रहीम, बिहारी, जायसी आदि दोहे के सिरमौर माने जाते हैं, उसी प्रकार कवि गिरधर को कुण्डलिया का पर्याय माना जाता है। उनके छंद आज भी मानक बने हुए हैं।

नई कविता के कारण छंदों की लोकप्रियता में कमी आई। मगर इसके बाजवूद कुण्डलिया छंद के एकल संग्रह समय-समय पर प्रकाशित होते रहे और यह छंद कठिन रचना विधान के बाद भी अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल रहा है।

भारतीय रेलवे में कार्यरत युवा अभियंता त्रिलोक सिंह ठकुरेला ने 'कुण्डलिया छंद के सात हस्ताक्षर' शीर्षक से देश के सात लब्धप्रतिष्ठ रचनाकारों के कुण्डलिया छंदों का संकलन प्रस्तुत कर इस छंद की समृद्धि का पथ प्रशस्त करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

सद्य: प्रकाशित संकलन में डॉ.कपिल कुमार, गाफिल स्वामी, डॉ.जे.पी.बघेल, डॉ.रामसनेहीलाल शर्मा यायावर, श्री शिवकुमार दीपक, श्री सुभाष मित्तल सत्यम तथा त्रिलोक

सिंह ठकुरेला के 22-22 कुण्डलिया, संक्षिप्त जीवन परिचय और छाया चित्र सहित प्रकाशित हुए हैं। संकलन की लगभग सभी रचनाएँ भाव, भाषा, लय और छंद की कसौटी पर खरी हैं और सम्पादक का श्रम सफल रहा है। इन कुण्डलियों में जीवन और जगत के विभिन्न रंग देखने को मिलते हैं। पर्यावरण, मँहगाई, नारी, धन-दौलत, स्वार्थ, गाँव की दुर्दशा, शहरीकरण आदि जहाँ छंदों के कथ्य बने हैं वहीं नीतिपरक कुण्डलिया भी काफी संख्या में हैं।

डॉ.रामसनेहीलाल शर्मा यायावर जी का ये छंद गाँव की मौजूदा तस्वीर प्रस्तुत करने में पूरी तरह सफल रहा है-

आये मेरे गाँव में, ये कैसे भूचाल।
खुरपी वाले हाथ ने, ली बन्दूक संभाल।।
ली बन्दूक संभाल, अदावत हँसती गाती,
रोज सुहानी भोर, अदालत चलकर जाती,
लड़ें मेड़ से खेत, लड़ रहे माँ के जाये।
कैसे-कैसे हाय, नये परिवर्तन आये।।

माया का महत्व इस भौतिकता के युग में कुछ ज़्यादा ही बढ़ गया है। श्री ठकुरेला कहते हैं-

माया को ठगनी कहे, सारा ही संसार।
लेकिन भौतिक जगत में, माया ही है सार।।
माया ही है सार, काम सारे बन जाते,
माया के अनुसार, बिगड़ते बनते नाते,
ठकुरेला कविराय, सुखी हो जाती काया।
बने सहायक लाख, अगर घर अपने माया।।

यह संकलन कुण्डलिया छंद को पुनः स्थापित करने में अहम भूमिका निभायेगा, वहीं नये रचनाकारों का भी पथ प्रशस्त करेगा, ऐसी आशा की जाती है। पुस्तक की छपाई सुन्दर, कागज स्तरीय और आवरण आकर्षक है। राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर द्वारा प्रकाशित इस 96 पृष्ठ वाली कृति का 150 रुपये मूल्य भी वाजिब है। इस सराहनीय और लीक से हटकर किये गये ऐतिहासिक प्रयास के लिए श्री ठकुरेला बधाई पात्र हैं।

-रघुविन्द्र यादव

प्रकृति-भवन, नीरपुर, नारनौल

भावमय क्षणों की रसात्मक अभिव्यक्ति

कुहरीले झरोखों से, वयोवृद्ध साहित्यकार यतीन्द्रनाथ राही का भावात्मकता से भरपूर काव्य संग्रह है। कविताएँ अनूठी हैं। उनमें संदेशात्मकता है सृष्टा का हर सृजन सुन्दर है, उसे प्यार दो। कवि का मानना है कि मन धोए बिना इबादत बेमानी है। कर्म निष्ठा व इन्सानियत का पक्ष लेती इन विविधवर्णी कविताओं में गांव-देहात, वन-जंगल का जीवंत चित्रण है जिसमें हिरण, खरगोश, गोरैया सब समाहित हैं।

जीवन का दर्शन, सत्य की महिमा, सत्ता की अहमन्यता तथा उम्र के हर पड़ाव का सुन्दर अंकन इन कविताओं में है। यद्यपि कविताएं छन्दमुक्त हैं तथापि यति, गति का सुमेल स्थापित किया है। शृंगार के दोनों पक्षों का भावपूर्ण चित्रण है हर आहट में पायल की झनक, हर दस्तक में चूड़ी की खनक। संसार की असारता, बीते पलों की यादें-कभी रुलाती हैं, कभी गुदगुदाती हैं तो कभी चुपके-चुपके बहुत कुछ कह जाती हैं। अलनूरा एक सुदीर्घ रचना है जिसमें कवि का आशावादी स्वर उभरा है कि जिन्दगी लम्बे सफर की कविता है जिसमें तलाश है कबीर की चादर, मीरा की चूनर, राधा के चीर व कन्हैया के अंगरखे की। कवि कामना करता है कि काश! हम वहाँ पहुँच सकें जहाँ आत्माएँ नूर में धुलकर पवित्र होती हैं।

कहानी, उपन्यास, खंडकाव्य आदि के रूप में जीवन की परिकल्पना एक नवीन सार्थक प्रयोग है। ईंट-पत्थर की भव्यता की अपेक्षा कवि प्यार व समर्पण का प्रतीक घोंसला प्राप्त करना चाहता है। कविताओं में कवि की पीड़ा उजागर हुई है कि आज आदमी मशीन बनता जा रहा है। इसलिए जिन्दगी की सुहानी ग़ज़ल फूहड़ व्यंग्य बन जाती है। वर्तमान सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था पर करारा तमाचा है ऊँची रोटियाँ, बौने हाथ। जीवन की जीवन्त तसवीर पेश की गई है घोंसला धर्म में। घोंसलों के बनने, भरने, गूँजने व रितने में खपती चली जाती है जीवन की लम्बाई। फिर शुरू होती है अस्तित्व की नई तलाश।

अस्मिता की चिंता से चिंतातुर कवि पूछता है कि सभ्यता-संस्कृति की विकास-सरिता में आदमी की अस्मिता क्या यूँ ही डूबती रहेगी? चीजें छोटी हों या बड़ी सबका अपना यथार्थ है, महत्व है। जैसे दीपक भले ही सूरज नहीं होता मगर उसके मन में अंधेरे से लड़ने का अनवरत संघर्ष ज़रूर है यह छोटी बात नहीं। ज़रूरत है यथार्थ से रूबरू होने की। कवि की मान्यता है कि जीवन कला है लेकिन तभी तक

जब तक उसमें सत्यं, शिवं, सुन्दरं का समावेश है। इनके अभाव में संवाद मात्र प्रलाप होंगे और अभिनय भोंडा प्रदर्शन होगा। सवाल के हर कटे माथे पर/ सवालों का खेत उगेगा नवीन प्रयोगधर्मिता दर्शाता है।

कवि ने माकूल उत्तर की चाह में शासन-प्रशासन, गाँव-नगर, भूख-प्यास, घर-घाट और हत्या-बलात्कार से संबंधित अनेक प्रश्न उठाए हैं। शहर के आदमी की परिभाषा देते हुए कवि कहता है कि उसके पास लम्बे कान, तेज आँखें, ऊँची नाक, मोटी खाल, मिश्री-सी जुबान, पाँव में पहिए और मुठ्ठियों में सपनों के रूप में बहुत कुछ है। परन्तु अफसोस कि उसके सम्वेदन पथरीले हैं। वह आधा तीतर आधा बटेर बनकर जी रहा है।

बहुत हास्यास्पद लगती है देशी गधे की विलायती रेंक के माध्यम से कवि ने निज भाषा-संस्कृति से जुड़े रहने की अलख जगाई है। एक कामगार किशोरी के जीवन के सशक्त, सुहावने रूप का सजीव चित्रण मन को लुभाता है। साथ ही मन में कुशंका का कुहासा फैलता है। इस कुहासे का निवारण करती हैं ये पंक्तियाँ इसकी जिन्दगी से ईर्ष्या न कर बैठें शिकार की आँख, पिंजड़े की पाँख। नारी की सबलता का रूप धरकर कवि-हृदय से अवतरित हुई हैं चुनौती भरी ये पंक्तियाँ शक्ति जब भी विद्रोहिणी हुई है, शिवत्व ही पददलित हुआ है। संग्रह में अलंकारों की छटा देखते ही बनती है कुछ यादें घटाओं-सी घुमड़ती हैं। तन भीगता है, मन भीगता है, हम डूबकर जीते हैं। इस संग्रह की भाषा सरल व छपाई त्रुटिरहित है।

पुस्तक - कुहरीले झरोंखों से
कवि -यतीन्द्रनाथ राही
प्रकाशक -ऋचा प्रकाशन, भोपाल
पृष्ठ संख्या - 102, मूल्य - 150 रुपये

-कृष्णलता यादव
1746 सेक्टर-10, गुड़गाँव

पीड़ा का गीतों में रूपांतरण : मेरे गीतों का पाथेय

जब उर में घनीभूत पीड़ा आ जाती है तो कभी गीत, कभी ग़ज़ल तो कभी दोहों की रचना करवाती है। यह पीड़ा वैक्तिक हो अथवा सामाजिक। बहुमुखी प्रतिभा के धनी शिवानंद सिंह 'सहयोगी' कृत 'मेरे गीतों का पाथेय' भी इसी पीड़ा की परिणति है। संग्रह में 93 गीतों का समावेश है।

इन गीतों में कवि की पीड़ा साफ-साफ झलकती है, फिर भी वह निराश नहीं है होता। प्रिय से मिलन न होने पर भी उसमें उम्मीद की किरणें उजागर रहती हैं। थकन के माथे पर भी कवि गीतों की बिंदी लगाता हुआ चलता है। प्रश्नों के हल खोजना उसकी प्रकृति है। समय के साथ छोड़ देने पर भी उसकी नियति शिकायत करना नहीं है। सपनों का टूट जाना उसे कदापि निराश नहीं करता है। वह तो अपनों को अपनाने पर बल देता हुआ चलता है, भले ही वे उसे न अपनाएँ। काँटों को अपना साथी मानने वाला प्रिय को ही गीत समर्पित करने में सुख का अनुभव करता है। वह पुकार उठता है-

मेरे गीत अधूरे रहते, जो तेरा संगीत न होता।
मुस्कानों का सुचित सलोना, गुंजन का नवगीत न होता।।

आज गाँव की हरियाली भी तार-तार है। यह कवि की पीड़ा का एक अनन्य रूप है। देखिए-

पगडंडी पर तड़प रही है, गाँवों की हरियाली।
सड़कों पर है ख़ाक छानती, शहरी सुबह निराली।।

कवि का प्रकृति के साथ भी गहन नाता है। उसका अनूठा रूप उसे अपनी ओर खींचता है। तभी तो उसका व्याकुल मन यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं करता-

नव बसंत ने आँखें खोलीं, फसलें खेल रही हैं होली।
सरसों पहने पीली चूनर, गेहूँ भरता हँस-हँस कोली।।

आज चारों ओर प्रदूषण ही प्रदूषण है। मिलावट का बोलबाला है। कड़ुवाहट का साम्राज्य है। लोकतंत्र का रूप कुरूप हो चला है। ऐसे में रामराज्य कैसे आएगा? कवि तरह-तरह से सोच को नये आयाम देता हुआ गीतों की रचना करता है। बानगी देखिए-

कोलाहल से भरे शहर में, जीवन कहाँ रहा।
तंगी से वीरान शहर में, भोजन कहाँ रहा?

इस प्रकार संग्रह में संयोग-वियोग, प्रकृति-चित्रण, सामाजिकता, आशा-निराशा, प्रेम-विश्वास, शृंगार-सादगी, कुँवारी पीड़ा, सहज जीवन, आगत-अतीत, स्मृतियों के शिलालेख, हँसी-खुशी, विकृत सत्ता, मानवीय संवेदनाओं, समय का सच आदि रंगों व भावों के सहज दर्शन होते हैं। सरल, सहज एवं सुबोध भाषा-शैली में लिखे गये इन गीतों में चुंबकीय आकर्षण है, जो पाठकों को रससिक्त कर देता है। प्रतीक, बिंब, उपमा आदि गीतों के प्राण हैं।

संग्रह का मुद्रण साफ-सुथरा एवं त्रुटिहीन है। आकर्षक मुखपृष्ठ कृति की शोभा दूनी करता है। कुल मिलाकर यह एक ऐसी कृति है जिसका हिन्दी साहित्य में स्वागत होगा।

पुस्तक - मेरे गीतों का पाथेय
कवि -शिवानंद सिंह 'सहयोगी'
प्रकाशक -कुसुम प्रकाशन, अलीगढ़
पृष्ठ संख्या -104 मूल्य -100 रुपये

-घमंडीलाल अग्रवाल
785/8, अशोक विहार, गुड़गाँव

साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियाँ

कवि चन्द्रसेन विराट को साहित्य-भूषण सम्मान

उत्तर प्रदेश शासन के हिन्दी संस्थान द्वारा दिया जाने वाला 'साहित्य-भूषण सम्मान' वर्ष 2012 के लिए इन्दौर के कवि चन्द्रसेन विराट को दिया जाएगा। पुरस्कार के तहत 2 लाख रुपये की राशि दी जाती है। पुरस्कार 14 सितंबर को लखनऊ में आयोजित होने वाले भव्य समारोह में उ.प्र. के मुख्यमंत्री द्वारा दिया जाएगा।

यह प्रतिष्ठित सम्मान श्री विराट को उनके विशद साहित्यिक अवदान के लिए मनोनयन से मिला है। पिछले 57 वर्षों की अनवरत काव्य साधना में गीतों, मुक्तकों के अतिरिक्त हिन्दी ग़ज़लों में उनका विशिष्ठ योगदान रहा है। उनके अब तक 34 काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने सात काव्य-संग्रह संपादित भी किये हैं। उनके साहित्य पर दो आलोचना ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, वहीं 11 पी.एच.डी. स्तरीय शोधकार्य पूर्ण हो चुके हैं तथा 5 प्रगति पर हैं। उन्हें पहले भी अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

त्रिलोक सिंह ठकुरेला को अकादमी पुरस्कार

आबूरोड़। सुपरिचित साहित्यकार श्री त्रिलोक सिंह ठकुरेला को बाल साहित्य में उल्लेखनीय योगदान के लिए राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा 'शम्भूदयाल सक्सेना बाल साहित्य पुरस्कार' प्रदान किया गया है। यह पुरस्कार उनकी चर्चित बाल साहित्य कृति 'नया सवेरा' के लिए दिया गया है।

राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर के सभागार में आयोजित साहित्य पर्व-2013 एवं मीरा समारोह में श्री ठकुरेला को इस पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। अकादमी के उपाध्यक्ष श्री आबिद अदीव ने श्री ठकुरेला का माल्यार्पण कर स्वागत किया। अकादमी अध्यक्ष श्री वेद व्यास ने शॉल, सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री बालकवि बैरागी ने सम्मान-पत्र, वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.प्रभाकर श्रोत्रिय ने स्मृति-चिन्ह, अकादमी सचिव डॉ.प्रमोद भट्ट ने पुरस्कार राशि 15000 रुपये एवं गुजराती के चर्चित साहित्यकार डॉ. केशुभाई देसाई ने पुष्पगुच्छ भेंट किया।

डॉ.सुशील गुरु सम्मानित

भोपाल। नगर की अग्रणी साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक संस्था 'कला मन्दिर' द्वारा शताब्दी यात्रा के 22वें वर्ष में आयोजित वार्षिकोत्सव एवं सम्मान समारोह के अर्न्तगत श्री देवेन्द्र दीपक की अध्यक्षता पूर्व राज्यपाल श्री अवध नारायण श्रीवास्तव के मुख्य आतिथ्य एवं वरिष्ठ पत्रकार पदमश्री विजयदत्त श्रीधर के विशिष्ट आतिथ्य में साहित्यिक उपलब्धिओं के लिए भोपाल के पूर्व सैनिक अधिकारी और साहित्यकार डॉ. सुशील गुरु को उनकी पुस्तक 'गीत कलश' के लिए सम्मानित किया गया।

उधर 'हम सब साथ साथ' देहली की लोकमान्य पत्रिका द्वारा डॉ. सुशील गुरु को साहित्यिक और सामाजिक कार्यो के लिए गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान में आयोजित कार्यक्रम में सम्मानित किया गया।

बिम्ब-प्रतिबिम्ब का लोकार्पण समारोह संपन्न

मुंबई। स्वामी विवेकानंदजी के जीवन पर आधारित वरिष्ठ साहित्यकार चंद्रकांत खोत द्वारा लिखित मूल मराठी कालजयी उपन्यास 'बिम्ब प्रतिबिम्ब' का हिन्दी अनुवाद लेखक पत्रकार रमेश यादव द्वारा किया गया है और इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली ने किया है।

इस उपन्यास का लोकार्पण समारोह एम.ए.सी.सी.आई.ए. सभागृह में डॉ.रामजी तिवारी की अध्यक्षता में एवं प्रमुख अतिथि मुंबई पुलिस आयुक्त डॉ.सत्यपाल सिंह के हाथों संपन्न हुआ। समारोह में बतौर प्रमुख अतिथि प्रो.जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, डॉ.सूर्यबाला, ओमा शर्मा, उपस्थित थे। पुस्तकांश का पाठ अंजन श्रीवास्तव, नेहा शरद, रमेश राजहंस और आनंद सिंह ने किया।

डॉ. सत्यपाल सिंह ने वेद और संस्कृति की रोचक जानकारी देते हुए स्वामी विवेकानंद और दयानंद सरस्वती का तुलनात्मक विवेचन पेश किया। अध्यक्षीय संबोधन में डॉ. रामजी तिवारी ने किताब को महत्त्वपूर्ण बताते हुए अपने

शिष्य रमेश यादव को अनुवाद की कसौटी पर पूरी तरह खरे उतरने की बधाई दी और कहा इस उपन्यास के माध्यम से खोत साहब ने एक नया प्रयोग किया है जो दखल लेने योग्य है। डॉ.सूर्यबाला ने इस कृति को हिंदी साहित्य जगत को मराठी साहित्य का अनमोल उपहार बाताया।

कादयान को विशेष साहित्य सेवी सम्मान

झज्जर। हरियाणवी लोक कला, संस्कृति को बढ़ावा देने एवं श्रेष्ठ साहित्य सृजन के लिए साहित्यकार, छायाकार व लोक संस्कृति मर्मज्ञ बेरी निवासी ओमप्रकाश कादयान को हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा राजभवन चण्डीगढ़ में आयोजित साहित्यकार सम्मान समारोह में मुख्यमंत्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा एवं राज्यपाल जगन्नाथ पहाड़िया ने 'विशेष साहित्य सेवी सम्मान' से सम्मानित किया। सम्मान के तौर पर इक्यावन हजार रूपये का चैक, शॉल, स्मृति चिह्न व प्रशस्ति पत्र प्रदान किये गये। समारोह में शिक्षामंत्री गीता भुक्कल, विधायक आनन्द कौशिक, मुख्यमंत्री के अतिरिक्त प्रधान सचिव के.के.खण्डेलवाल, जन सम्पर्क विभाग के निदेशक सुधीर राजपाल, मुख्यमंत्री के राजनीतिक सलाहकार प्रो.विरेन्द्र सिंह, प्रसिद्ध हास्य कवि पदमश्री सुरेन्द्र शर्मा, साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ.श्याम सखा 'श्याम', हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, उर्दू, संस्कृत, पंजाबी अकादमियों के निदेशक, उपाध्यक्ष के अलावा हरियाणा भर व बाहर से आए सैकड़ों साहित्यकार, साहित्यप्रेमी मौजूद थे।

'आन्ध्यां की लाट्टी', 'हम पंछी नील गगन के', 'हरियाणा की सांस्कृतिक धरोहर', 'हरियाणा की सांस्कृतिक विरासत', 'हरियाणा के लोकगीत' सहित ओमप्रकाश कादयान की विभिन्न विधाओं पर अब तक आधा दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

मधुकांत को बाबू बालमुकुन्द गुप्त साहित्य पुरस्कार

रोहतक। साँपला निवासी वरिष्ठ साहित्यकार मधुकांत को उनके उत्कृष्ट साहित्यिक योगदान के लिए हरियाणा साहित्य अकादमी ने प्रतिष्ठित 'बाबू बालमुकुन्द गुप्त साहित्य पुरस्कार' प्रदान किया है। पुरस्कार में एक लाख रुपये, स्मृति-चिह्न, शाल और प्रशस्ति पत्र प्रदान किये गये। यह पुरस्कार श्री मधुकांत को हरियाणा राजभवन, चण्डीगढ़ में आयोजित कार्यक्रम में प्रदेश के राज्यपाल और मुख्यमंत्री ने प्रदान किया। इस अवसर पर प्रदेश के मंत्री, वरिष्ठ अधिकारी और साहित्यकार उपस्थित थे।

गौरतलब है कि श्री मधुकांत की अब तक विभिन्न विधाओं की लगभग चार दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी चार कृतियों को पहले ही हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। वे साहित्यिक-पत्र 'प्रज्ञालु' के प्रकाशक-संपादक भी हैं।

रघुविन्द्र यादव को यादव साहित्य-भूषण सम्मान

महेन्द्रगढ़ (उत्तम प्रकाश)। जनपद के वरिष्ठ साहित्यकार रघुविन्द्र यादव को उनके साहित्यिक योगदान के लिए यादव सभा, महेन्द्रगढ़ ने 'यादव साहित्य-भूषण सम्मान' प्रदान किया। यादव सभा-भवन में मुख्य संसदीय सचिव राव दानसिंह के मुख्यातिथ्य और यादव कुलगुरु स्वामी शरणानंद जी की अध्यक्षता में 7 जुलाई को आयोजित कार्यक्रम में श्री यादव को शाल, स्मृति-चिह्न, प्रशस्ति-पत्र और नगद राशि देकर सम्मानित किया गया। इस अवसर पर यादव सभा के प्रधान राव रामकुमार, आई.ए.एस. अधिकारी नरेन्द्र यादव, सभा के पदाधिकारी और गणमान्य नागरिक उपस्थित थे।

गौरतलब है कि श्री यादव की अब तक आधा दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें उनका दोहा संग्रह 'नागफनी के फूल' राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित रहा है। वे शोध और साहित्य की पत्रिका 'बाबूजी का भारतमित्र' के प्रकाशक और संपादक भी हैं। इस अवसर पर कुछ और यादव प्रतिभाओं को भी सम्मानित किया गया।

शोध-आलेख

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श और जैनेन्द्र-यशपाल का स्त्री चिंतन

भारतवर्ष विविधताओं का देश रहा है। यहाँ अनेक धर्म और जाति के लोग आये और रच-बस गये। यह अनेक देवी-देवताओं का देश रहा है, जहाँ धार्मिक पूजा एवं उपासना के अनेक रूप साथ-साथ प्रचलित रहे हैं। स्वयं हिन्दू-धर्म के अंतर्गत अनेक दार्शनिक-सिद्धांत, अनेक उपास्य देवता एवं मोक्ष या निर्वाण प्राप्ति के अनेक मार्ग स्वीकृत किये गये हैं। विविधता में समन्वय ही भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व है। समन्यवाद जैसी पवित्र भावना होने के बावजूद भारतीय संस्कृति में सामंती तत्वों का समावेश कब और कैसे संभव हुआ, इसका अवलोकन आवश्यक है।

प्रारम्भिक दौर में बड़ी ही सावधानी से भारतीय संस्कृति में सामंती तत्त्वों का समावेश हुआ। प्रश्न उठता है कि भारतीय-संस्कृति में नैतिक मूल्यों को ही विशेष महत्त्व क्यों दिया गया? क्या परंपरा ईश्वर से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण और महान है? अगर ऐसा है तो इसके पीछे कौन-सी मंशा है? इन प्रश्नों का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाये तो स्पष्ट होगा कि नैतिक मूल्यों को बनाये रखने और परंपरा-तिरस्कार निषेध की चेतावनी शासकीय मनोवृत्ति से संचालित है। यही कारण है कि ईश्वर से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण वह शासनादेश है, जो अप्रत्यक्ष रूप से धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से दिया गया।

अर्थ के साथ उपभोग का अभिन्न संबंध है। इसलिए नीति-नियामकों और राजाओं द्वारा लागू किये गये नैतिक-मूल्य, ईश्वर से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण थे। इसलिए समाज को संचालित करने के लिए धीरे-धीरे पुरुषवादी संस्कृति विकसित की गई। पितृवादी संस्कृति दीर्घकाल तक अपनी अक्षुण्णता बनाये रखे, इसलिए पुरुष आचार-संहिता अर्थात मनुस्मृति की रचना की गयी। इसमें स्पष्ट बताया गया है कि बल या शक्ति के आधार पर दीर्घ काल तक स्त्री को वश में नहीं रखा जा सकता है, इसलिए स्त्री को घर से जोड़ो-

'अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेंत्
शोच धर्मेंडन्नपक्तयां च पारिणाह्यस्य योजने।'[1]

स्त्री को शक्तिहीन करने के लिए उसके आत्मविश्वास पर प्रहार किया गया। मनुस्मृति के माध्यम से स्त्रियों के लिए यह आचार-संहिता लागू की गयी कि स्त्री अपनी रक्षा भी स्वयं नहीं कर सकती थी। इसके लिए उसे पिता, पति और बेटा के रूप में पुरुष का मोहताज रहना पड़ेगा-

'पिता रक्षति कौमारे, भर्त्ता रक्षित यौवने।
पुत्रश्य स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।'[2]

इसकी दु:खद परिणति यह हुई 'पुरुष की सांस्कृतिक सत्ता ने स्त्री को वह सामाजिक सुविधा नहीं दी जो कि पुरुष को परम्परा से मिलती रही। स्त्री ने एक जीव के रूप में जन्म तो लिया मगर इसके बाद पुरुष की सभ्यता और सत्ता पर अपनी मान्यताएँ ही नहीं, सब कुछ समर्पित करती रही।'[3]

उल्लेखनीय है कि जिन नैतिकतावादी मूल्यों की दुहाई देकर गौरवमयी परम्परा को भारतीय संस्कृति का प्राण-तत्त्व माना जाता है, उसी संबंध में पुरुषों को उनके द्वारा स्त्री-पुरुष के भेदभाव की संस्कृति को बढ़ावा देने के जुर्म से बरी करने के लिए विरोधाभाषी कथन से भी परहेज नहीं किया गया। इसके लिए दो नीति अपनाई गयी। एक तरफ यह फरमान जारी किया गया कि स्त्री को जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुष के अधीन रहना चाहिए, वहीं दूसरी तरफ पुरुषों को यह नेक सलाह दी गयी कि वह किसी भी स्त्री, यहाँ तक कि माँ, बहन, बेटी के साथ भी एकांत में न बैठें। भारतीय संस्कृति में माँ को देवता के समकक्ष बताया जाता है और उसकी पूजा श्रद्धा से की जाती है। बहन-बेटी का रिश्ता भारतीय संस्कृति में विशिष्ठ गरिमा के साथ प्रतिष्ठित है। एक तरफ माँ को देवी मानकर पूजा की जाती है तो दूसरी तरफ माँ के पास भी पुरुषों को अकेले बैठने की मनाही की जाती है, क्योंकि इन्द्रियों पर पुरुष का वश नहीं होता। शरीर के प्रति भौतिकवादी सच को स्वीकारते हुए भी नैतिक मूल्य की बात करना और उस पर इतराना हास्यास्पद है।

'यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।' अर्थात जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का आशीर्वाद बरसता है। भारतीय सभ्यता में एक तरफ स्त्री को देवताओं के समकक्ष बताया गया है, तो दूसरी तरफ 'स्त्री शुद्रो ना धीयताम' अर्थात स्त्री और शुद्र को पढ़ना नहीं चाहिए और 'ढोल गँवार शुद्र पशु-नारी, यह सब ताड़न के अधिकारी' कहकर स्त्री को उपेक्षित भी किया गया है। स्त्री को देवी कहकर महिमामंडित किया गया है। इसके माध्यम में एक तरफ सामान्य जीव से दिखावटी श्रेष्ठता की ओर इंगित है, तो स्त्री की उपेक्षा करने और उसे शिक्षा से वंचित रखने की नेक सलाह के माध्यम से समाज में स्त्री की सीमा को भी रेखांकित किया गया है।

स्त्री को परतंत्र बनाने के लिए हर उस साजिश को धर्म, दर्शन और साहित्य के माध्यम से संस्कार का अमली जामा पहनाया गया, जिससे स्त्री की तेजस्विता को निष्क्रिय किया जा सके। पुरुषों ने यह भ्रम पैदा किया कि 'सामाजिक आचार्य

संहिताओं यानी मनु और याज्ञवल्क्य स्मृतियों से लेकर व्यक्तिगत कामसूत्र तक औरत को बाँधने और जीतने की कलाएँ हैं। ..पुरुष ने स्त्री के खून में यह भावना संस्कार की तरह कूट-कूट कर भर दी है कि वह सिर्फ शरीर है। शरीर के सिवा उसकी किसी और पहचान से वह इनकार करता है।'[4]

जबकि इतिहास इस तथ्य का प्रमाण है कि वैदिक-युग में स्त्रियाँ मन, मस्तिष्क और मेधा थी। आदिम युग में स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। आदिम युग से आधुनिक युग के वैज्ञानिक समाज तक का लम्बा सफर स्त्री-चेतना की दृष्टि से उबड़-खाबड़, संघर्षमय और विडम्बना-पूर्ण रहा है। विडम्बना इसलिए कि आदिम युग की प्रारम्भिक अवस्था में लिंगगत भेदभाव बौद्धिक रूप से जटिल नहीं थी। जीवन एक सरल-सहज प्रक्रिया एवं विकास का पर्याय थी। उस समय स्त्रियों की सामाजिक अवस्था पुरुषों के समान थी। स्त्रियाँ भी पुरुषों की भाँति व्यक्तित्व संपन्न और बौद्धिक क्षेत्र में हस्तक्षेप रखती थी, लेकिन विकास की एकांगी और अंधी प्रवृति के परिणामस्वरूप समान हैसियत रखने वाली स्त्री चौखट और नियमों में कैद होती चली गयी। नियमों का यह जाल विश्वास-अविश्वास, धर्म-अधर्म के मजबूत रेशे से इतना घना बुना गया है कि घर के लक्ष्मण-रेखा को पार करना स्त्री गरिमा के विरूद्ध है, दुष्प्रचार को सत्य मानने के लिए बाध्य किया गया है।

स्त्री जीवन विडम्बनापूर्ण इसलिए भी है कि वैज्ञानिक स्थापनाओं और विकासक्रम के सामयिक अंतराल में पुरुषों ने धर्म-अधर्म के अंधविश्वासों से स्वयं को मुक्त किया, जबकि स्त्री उन अंधविश्वासों में और भी जकड़ती चली गई। यही कारण है कि स्त्री अबला और आँसू का पर्याय बनती गई और पुरुष मन, मस्तिष्क और मेधा का स्वामी बन गया।

सदियों से पक्षपातपूर्ण व्यवहार की टीस, वैचारिक उथल-पुथल, स्वतंत्रता-बोध, अधिकार-बोध और स्वतंत्रता आंदोलन के यौद्धिक परिस्थितियों में पारिवारिक सामाजिक कर्त्तव्य की पूर्ति हेतु स्त्रियाँ जब घर से बाहर निकलीं तो नैतिक-अनैतिक, योग्य-अयोग्य, सही-गलत की मानसिक कशमकश एवं स्त्री-हीनता की प्रक्षेपित अवधारणा के विरूद्ध स्त्री मुक्ति आंदोलन के ठोस धरातल का अवलम्ब मिला। घर के बाहर और भीतर के जीवन के बुनियादी फर्क ने स्त्रियों को इस तरह से आंदोलित किया कि स्त्री भी पुरूष के समान मानव है उसके भी प्राकृतिक अधिकार हैं, उनमें भी पुरुषों जैसा कार्य करने की प्राकृतिक शक्ति का अक्षय स्त्रोत है, का वैचारिक बोध हुआ और यही भावना स्त्री चेतना की जागृति का प्रमुख कारण बनी। सचेत होने की प्रक्रिया और सचेतनता के स्तर क्या-क्या हैं? मृदुला गर्ग यह स्पष्ट करती हैं-'जो दृष्टि नारी की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक छवि के तिलिस्म को तोड़े, वह नारी चेतना है।'[5]

स्त्री चेतना न केवल दोयम दर्जे के तिलिस्म को तोड़ने का आंदोलन है बल्कि सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक स्तर पर परम्परागत मान्यताओं, रूढ़िवादी वर्जनाओं तथा पितृवादी अत्याचारों के विरूद्ध विद्रोह की चेतना है। इसका मूल धर्म है, पितृवादी सत्ता के विरूद्ध स्त्री को मानव के रूप में प्रतिष्ठित करना एवं सर्जनात्मक गुणों के साथ उसकी उपस्थिति दर्ज कराने के अधिकार चेतना का एहसास है। प्रश्न उठता है कि वे कौन-सी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई कि स्त्रीवादी चेतना का प्रादुर्भाव हुआ? हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-मुक्ति का स्वर कब और कैसे प्रस्फुटित हुआ?

18वीं शताब्दी में भारत राजनीतिक दृष्टि से अंग्रेजों के अधीन था। अंग्रेजी शासन ने भारतीय शिक्षा एवं कुटीर उद्योग को इस तरह से नष्ट किया कि सदियों से शोषित स्त्री और भी पीड़ित हुई। अंधविश्वास, अज्ञानता, गरीबी, शोषण से मुक्ति के लिए समाज-सुधारकों का एक ऐसा वर्ग तैयार हुआ जिसने पिछड़े वर्गों की मुक्ति के लिए जन-जागरण का आंदोलन चलाया। इस प्रकार पिछड़े वर्ग के साथ-साथ नारी-पराधीनता और पिछड़ापन भी इन आंदोलनों का प्रमुख विषय बना। सती प्रथा का उन्मूलन, बाल-विवाह पर रोक, विधवा विवाह का अनुमोदन, स्त्रियों के सम्पत्ति अधिकार के लिए कानून बनाने की पैरोकारी करना आदि इसी चेतना की देन हैं। इन घटनाओं से प्रभावित होकर हिन्दी रचनाकारों ने भी स्त्री समस्याओं की पहचान की, लेकिन उनके निवारण के संदर्भ में केवल सुधारात्मक रवैया ही अपनाया।

पितृवादी संस्कारों से युक्त सुधारवादी चेतना का प्रभाव प्रेमचंद पूर्व के उपन्यासों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस काल का प्रारम्भिक डेढ़ दशक मूलत: स्त्री संवेदना की दृष्टि से संवेदना शून्य का काल था। सदियों से चले आ रहे शोषण के प्रति विरोधी स्वर पुनर्जागरण और सुधारवादी आंदोलनों के माध्यम से सुलग रहा था, लेकिन पितृवादी संस्कार समाज पर इस तरह से हावी था कि मन से स्त्री-सुधार के प्रति हिमायती होते हुए भी संस्कारवश रचनाकारों ने स्त्रियों का चित्रण परम्परागत स्त्री के रूप में किया। हिन्दी उपन्यासों में स्त्री शोषण को यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य में उठाने का श्रेय प्रेमचन्द को जाता है। 'सेवासदन' के जिस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से प्रेमचंद अपनी लेखकीय प्रतिबद्धता शुरू करते हैं, वह 'गोदान' तक आते-आते यथार्थवादी हो जाती है। प्रेमचंद ने हिन्दी साहित्य को किसान से जोड़ा। किसान और किसान के

कंधे से कंधा मिलाकर हर सुख-दुख में साथ देने वाली स्त्री भी हिन्दी उपन्यास का केन्द्रीय विषय बनी।

सदियों से प्रताड़ित स्त्री के अन्तर्मन की वेदना को पहली बार जैनेन्द्र प्रेमचंदीय लीक से अलग हटते हुए, मनोविश्लेषणवादी नजरिये से पड़ताल करते हैं। पितृवादी सत्ता स्त्री शोषण के लिए कितना आंतरिक स्वांग रचती है और स्त्री तन के साथ-साथ मानसिक रूप से कितना लहूलुहान होती रहती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण 1920 ई. में रचित परख, 1935 ई. में सुनीता, 1937 ई. में त्यागपत्र और 1939 ई. में रचित कल्याणी हैं।

'परख', 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' हिन्दी उपन्यास साहित्य का ऐसा दस्तावेज है जिसने कट्टो, सुनीता और मृणाल के माध्यम से पितृवादी सत्ता के निर्बाध संसार में वैचारिक तख्ता पलट किया और उनके विरूद्ध आंदोलन चलाने में उस कील की भूमिका अदा की है, जिसे अपनी कमियों और अतिवादिता के बावजूद हिंदी उपन्यास साहित्य में स्त्री-मुक्ति आंदोलन का आदिग्रंथ माना जाता है।

कट्टो, सुनीता, मृणाल और कल्याणी के माध्यम से जैनेन्द्र पितृवादी सत्ता के उस मानसिक साम्राज्य का रहस्योद्घाटन करते हैं जहाँ स्त्री-शोषण षड्यंत्र के रूप में सर्वप्रथम आकार लेती है। स्त्री-जीवन बालिका से लेकर स्वनिर्भर औरत तक किन-किन परिस्थितियों और किन घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में मानसिक विचलन की शिकार होती है, स्त्री का किस प्रकार स्वयं के जीवन से मोहभंग हो जाता है, स्त्री जीवन किस प्रकार पुरुषों की दया-दृष्टि और उधार की जिन्दगी साबित करार दी जाती है और जब वह इसका प्रतिरोध करती है तो असामाजिक, कुलटा करार दी जाती है, लेकिन अपनी जीवटता, दृढ़-प्रतिरोधक क्षमता के आधार पर विरोध का नया पथ इजाद करती है, वह है तटस्थता का। जिस प्रकार गांधीवादी-अहिंसावादी, क्रांतिकारी देश को गुलामी के बंधन से मुक्त कराने के लिए इतना प्रतिबद्ध थे कि खून की बहती हुई धार और शस्त्रों के निर्मम प्रहार भी उन्हें डिगा नहीं पाये, उसी प्रकार मृणाल पितृवादी, साम्राज्यवादी, सामंतवादी पितृसत्ता के खिलाफ अहिंसात्मक मोर्चा खोलती है।

जैनेन्द्र ऐसे नारी पात्रों की रचना करते हैं जो ना ही परंपरा के नाम पर थोपी गई स्त्री-विरोधी भावना की चादर ओढ़ती है और ना ही परंपरा से प्राप्त अनमोल धरोहर को प्राचीन कहकर पटक देती है। इन स्त्री-पात्रों की खासियत यह है कि परंपरा को नये ढंग से न केवल व्याख्यायित करती हैं बल्कि समाज को नये सिरे से परखती हैं। इनमें न तो समाज को ध्वस्त करने की धारणा है न ही समाज की सड़ी-गली मान्यताओं को आत्मसात करने की विवशता है। इनमें समन्वयवाद की गहरी भूख है जो आत्मपीड़न के दर्शन से संचालित है। पीड़ा इनकी विवशता और कमजोरी बनकर इन्हें तोड़ती नहीं बल्कि इनकी शक्ति का स्त्रोत है।

इनके स्त्री-पात्र सहजता के प्रतीक हैं, इसलिए प्रेम के आधिपत्य को स्वीकार करती हैं, लेकिन परंपरा और नैतिकता के सामाजिक दबाव में स्वीकार नहीं करती हैं। जैनेन्द्र के स्त्री पात्र 'पर' के बजाए 'स्व' की भावनाओं से प्रेरित हैं। भले ही पर की भावना स्व पर हावी होने का भ्रम पैदा करती है, किन्तु स्व ही पर पर हावी रहता है।

इनके स्त्री पात्र परम्परा और नैतिकता में जकड़बंद समाज को नया नजरिया देती है। भारतीय परंपरा में स्वीकृत स्त्री-छवि को नये अर्थ संदर्भ से जोड़ती हुई इनके स्त्री पात्र गहरे दायित्व बोध से संचालित होती है। नये अर्थ-संदर्भ का अर्थ समाज में उथल-पुथल मचाना नहीं है, बल्कि प्रतिशोध हीनता को उत्कट समर्पण के विकल्प के रूप में प्रतिष्ठित करना है। काम की जगह प्रेम को उपचार के रूप में स्थापित करना जैनेन्द्र की लेखकीय स्थापना रही है। अर्चना वर्मा जैनेन्द्र के स्त्री-पात्रों की नवता को रेखांकित करती हुई अपना मंतव्य देती हैं-'प्रेम और समर्पण की ये प्रतिमाएँ अपने प्रेम और समर्पण के कारण ही बिना किसी द्रोह के पितृसत्ता का चरम विलोम रच डालती हैं जो उन्हें एक अद्भुत अहिंसक दृढ़ता के साथ निषेधों और मर्यादाओं का अतिक्रमण कर जाने की ताकत देता है, जिसे उन्होंने सत्य माना उसके प्रति एक निश्शंक समर्पण, उनको अपने सही होने का अहसास अपने निर्णय को आखिर तक ले जाने का साहस उस पर टिके रहने को एक नैतिक औचित्य और उनके जीवन के घट-दुर्घट को एक अलग-सी गरिमा लगभग पवित्रता का स्पर्श देती हैं।'[6]

शरीर यहाँ बंधन या नैतिकता के पर्याय के रूप में उपस्थित नहीं है बल्कि मानसिक स्वतंत्रता का प्रतीक है। मानवीय मूल्यों का जेवर पहने ये स्त्री-पात्र अपने शरीर से अधिक अपनी मानसिक सुंदरता को निखारने में लगी रहती हैं। यही कारण है कि जैनेन्द्र के स्त्री पात्र पारंपरिक होने का भ्रम पैदा करती हैं। अक्सर आलोचक शरीर की शुचिता और उन्मुक्तता में उलझे रहते हैं। जबकि जैनेन्द्र अपने स्त्री-पात्रों को स्त्री-पुरुष आत्मा की अभेदता से जोड़ते हैं। 'स्त्री-पुरुष की आत्मा में तो अभेद है न शरीर से हमें आत्मा की ओर बढ़ना है।'[7]

गौरतलब है कि जैनेन्द्र के स्त्री-पात्र खालिस स्त्री-मुक्ति के लिए नहीं रचे गये हैं। जैनेन्द्र की दृष्टि में स्त्री-पुरुष की

सार्थकता एक दूसरे के विलय में है। किसी एक की उपेक्षा करके दूसरे की मुक्ति संभव नहीं है। विज्ञान के चकाचौंध में भले ही हम एक दूसरे के भ्रम में रह सकते हैं, लेकिन स्त्री की मुक्ति स्त्री पुरुष के आपसी सामंजस्य में ही है। जैनेन्द्र स्त्री पुरुष के बीच वीरानापन के विरोधी थे। यही वीरानापन स्त्री और पुरुष के बीच आदमी-आदमी के बीच दीवार बन जाती है। 'आदमी-आदमी से अलग स्त्री-पुरुष से अलग और अब आपस में अलग-अलग और इस अलगपन को थामकर एकता जुटाने वाला हेतु पैसे के हिसाब और कानूनी दस्तावेज। परिणाम यह हो आया है कि प्रकृतिगत स्नेह के कारण एक-दूसरे की ओर कितना भी खिंचता हो, पर अपने व्यक्तित्व की आसक्ति में एक दूसरे से अपनी सुरक्षा का ध्यान भी उतना ही रखता है। इसमें परस्परता और एकता का ताना झीना बनता और समाज में स्थिरता और असुरक्षा की भीत्ति बढ़ती है।'[8]

स्त्री-पुरुष के बीच प्राकृतिक स्नेह से छेड़छाड़, एक दूसरे के अस्तित्व को झुठलाने के समान है। इसलिए जैनेन्द्र सिर्फ अकेली स्त्री-मुक्ति का प्रश्न नहीं उठाते हैं। जैनेन्द्र की दृष्टि में स्वतंत्रता का अर्थ कर्त्तव्यों की इतिश्री नहीं है, बल्कि गहरे कर्त्तव्य बोध से स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त होता है। यही कारण है कि जैनेन्द्र के स्त्री-पात्र सामाजिक पारिवारिक दायित्व से मुक्त होने में अपनी सार्थकता नहीं देखती हैं। अर्चना वर्मा के शब्दों में कहा जाये तो-'मृणाल (त्यागपत्र), सुनीता (सुनीता), कल्याणी (कल्याणी) और रंजना (दशार्क) को रचकर उन्होंने वस्तुत: स्त्री के मन में एक गहन दायित्व बोध की प्रतिष्ठा की है।'[9]

कोई भी शक्ति अर्थ के बिना अपंग होती है। अर्थ की सत्ता जिसके पास होती है, शासन भी उसी का होता है। यशपाल स्त्री-मुक्ति आंदोलन को जमीनी स्तर से जोड़ते हुए आर्थिक स्वतंत्रता को स्त्री-मुक्ति का प्रधान एवं मुख्य लक्ष्य मानते हैं। मार्क्सवाद स्त्रियों की पराधीनता के मूल में आर्थिक विषमता को प्रमुख कारण मानता है। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार समाज में उसी की सत्ता चलती है, जिसका उत्पादन के साधनों पर अधिकार होता है। पूँजीपति समाज में स्त्री को उत्पादन का एक मात्र साधन माना जाता है और उत्पादन के अन्य साधनों के समान उपभोग्य भी।

यशपाल ऐसे स्त्री-व्यक्तियों को गढ़ते हैं, जिसकी अपनी गरिमा है। समाज में उसका सम्मान है, इसलिए नहीं कि वह किसी की बेटी, बहन, पत्नी एवं माँ है, बल्कि वह एक 'कॉन्शस फीमेल' है। यह 'कॉन्शसनेस' शिक्षा की देन है। शिक्षा का ही परिणाम है कि यशपाल के स्त्री पात्र ठोकर लगने पर चोट को सहलाते हुए ठिठकने की बजाए गलतियों से सीख लेकर आगे बढ़ने को तत्पर रहती हैं।

स्पष्ट है कि उनके स्त्री-पात्रों में जीवन के प्रति स्वयं की समझ है। वह किसी के बहलाने, फुसलाने से बहलने वाली मादा नहीं है, बल्कि तर्क की कसौटी पर कस कर अपनी बात को सही साबित करने वाली विवेकशील जागरूक फीमेल है। 'विवाह शिक्षा समाप्त करके ही करना है।'[10]

इनकी सोच पारंपरिक स्त्रियों की तरह नहीं है। आम स्त्री, विवाह को जीवन का अंतिम लक्ष्य मानते हुए पितृसत्ता के उसूलों का ईमानदारी पूर्वक निर्वहन करती हैं और इन्हीं उसूलों के आधार पर कुंठायुक्त संस्कारों से ग्रसित बच्चों की परवरिश तक सीमित रहती हैं। यशपाल का स्त्री-दृष्टिकोण, स्त्री की प्रगति विरोधी चक्रव्यूह को बेधते हुए स्वच्छंद यौनिकता, स्वतंत्र प्रेम और विवाह के संबंध में स्त्री-इच्छा को महत्त्व देती हैं, जिससे कुंठा-मुक्त स्वतंत्र समाज का गठन हो सके।

'दादा कॉमरेड', 'पार्टी कॉमरेड', 'मनुष्य के रूप', 'झूठा-सच', 'मेरी तेरी उसकी बात' आदि उपन्यासों में यशपाल ऐसे स्त्री-पात्रों की कल्पना करते हैं जो स्वनिर्भर हैं, घर की चिंता भी उनकी चिंता का विषय है। शैल, गीता, मनोरमा, उषा, तारा, श्यामा, आदि ऐसे स्त्री-पात्र हैं जो घर की चौहद्दी से निकलकर न केवल पार्टी की संगठनात्मक गतिविधियों से जुड़ती हैं, बल्कि क्रांति की लहर में उन्मत्त होकर आजादी की लड़ाई का नेतृत्व भी करती हैं और पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चलने की क्षमता रखती हैं। इनके स्त्री-पात्र अपने व्यवहारिक जीवन में समाज के लांछनों और आक्षेपों की परवाह नहीं करती हैं। 'इनके स्त्री पात्र सामंती नैतिकता के विरूद्ध विरोध का झंडा उठाती हैं। उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। अनेक दुर्बलताओं के होते हुए भी वह कई अवसरों पर असामान्य व्यक्तित्व लेकर प्रकट होती हैं।'[11]

देह स्त्री की है इसलिए निर्णय लेने का अधिकार भी स्त्री को है। प्रेम और काम-संबंध एक जीव-शास्त्रीय क्रिया-व्यापार है। इस पर पवित्रता का मूल्य आरोपित नहीं होना चाहिए। देह के नाम पर स्त्री सबसे ज्यादा शोषित हुई है। इसलिए यशपाल, परम्परा और यौन-शुचिता के नाम पर थोपे गये पवित्रतावाद का पूर्ण विरोध करते हैं।

पुरुष के समान स्त्री में भी काम की इच्छा उत्पन्न होना सहज मानवीय भाव है। नैतिकता का हवाला देकर स्त्री को उसके जैविक अधिकार से वंचित रखना इसके विकास गति को प्रतिबंधित करना है। इसलिए यशपाल के स्त्री पात्र अपने इस जैविक अधिकार का अपनी इच्छानुसार उपयोग करती हैं।

सत्तर-अस्सी के दशक में समकालीन हिंदी साहित्य में महिला लेखिकाओं का आगमन हिंदी साहित्य में प्यूरिटिवाद,

पवित्रतावाद और नैतिकवादी दृष्टिकोण वाले पितृवादी-व्यूह को तोड़ता है। ये लेखिकायें भारतीय समाज में सीता रूपी स्त्री को रावण के साथ-साथ राम के पौरुषीय शासन-व्यवस्था और मर्यादा रूपी गौरवमयी संस्कृति से मुक्ति और मोहभंग की सामाजिक पहल के लिए वह प्लेटफार्म तैयार करती हैं, जहाँ से सीता स्वतंत्र होकर अपने दम-खम पर लव और कुश जैसे बाल-योद्धाओं को न केवल जन्म देती है बल्कि राम की संपूर्ण सेना एक तरफ जिसमें जीत सीता की होती है, की अवधारणाएँ सामने आती हैं। समकालीन हिंदी उपन्यासों में रचनाकारों द्वारा स्त्री-प्रश्नों एवं समस्याओं को शब्दजाल से बुनने के बजाए स्त्री-जीवन संबंधी उन व्यावहारिक संघर्षों को मूर्त रूप देने की कोशिश शुरू हुई जिसे मातृत्व की दुहाई देकर साड़ी के पल्लू और आँचल के अंधेरे में दबा दिया जाता था। विधवा विवाह, बाल-विवाह, दहेज प्रथा जैसे पारम्परिक स्त्री-पीड़ा के अलावा उन बारीक कारणों को शब्द रूप दिया गया जिसे भारतीय स्त्रियाँ पल-पल त्याग के नाम पर स्वयं को पारिवारिक हवन कुंड में विसर्जित कर देती हैं।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में इन्हीं व्याधियों की पहचान की गई और स्त्री-पुरुष समानता की वकालत के साथ-साथ स्त्री जीवन के पल-पल संघर्षों और अंतर्द्वंद्वों को दर्शाया गया। परम्परा और आधुनिकता के फासले को तय करती स्त्री की कथा-यात्रा और उन चुनौतियों को समकालीन उपन्यासों में प्रमुखता मिली। स्त्री-प्रश्नों के बारीक विश्लेषण, उनके निदान और विकल्पहीनता में भी विकल्प को तलाशने का प्रयास किया गया। समकालीन हिंदी उपन्यासों की नायिकाएँ स्त्री के अंत:सघर्ष के साथ-साथ प्रेम, विवाह, विवाहेत्तर संबंध, यौन-शुचिता, आर्थिक-मुक्ति, सामाजिकता आदि विषयों को पुनर्विचार के लिए बाध्य करती हैं।

सदियों से नारी शोषित होती आयी है तो इसके मूल में रहा है, स्त्री का चौखट की चौहद्दी में कैद रहना। इसका प्रमुख कारण है अर्थ और सैक्स। गौरतलब है कि परम्परा के आलोक में चौखट की लकीर को स्त्री के मन में इतना गहरा खींचा गया कि दरवाजा खोलने की अधिकारिणी होते हुए भी स्त्री को चौखट लाँघने की इजाजत नहीं थी। समकालीन हिंदी उपन्यासों की नायिकाओं ने परम्परा द्वारा प्रायोजित पितृवादी हथियार 'अर्थ' और 'सेक्स' की धार को भोथरा किया। इन स्त्री पात्रों ने पारम्परिक शुद्धतावाद के समीकरण का तख्ता पलट करते हुए स्त्री-शोषिता की छवि में बदलाव की सजग पहल की है।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में यह चेतना उभर कर आई है कि वह न प्रोडक्ट है, न ही सम्पत्ति है, बल्कि पुरुष के समान वह भी एक मनुष्य है जो किसी मुद्दे पर अपना निर्णय सुना भी सकती है और तमाम विरोधों के बावजूद उस पर अटल भी रह सकती है। आर्थिक आत्मनिर्भता से उनमें साहस का संचार हो रहा है।

समकालीन उपन्यासों में स्त्री अपनी क्षमता पहचान भी रही है, अपनी चुप्पी को आवाज भी दे रही है और काफी हद तक बदलते हुए नये विकल्पों का निर्माण भी कर रही है। स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासों में जहाँ स्त्री चेतना, स्त्री मुक्ति आंदोलनों का रूप धारण कर रही थी, वहीं समकालीन उपन्यासों में इसके दशा और दिशाओं का सैद्धांतिक निर्धारण होता है। जैनेन्द्र और यशपाल द्वारा प्रतिपादित स्त्री-विमर्श समकालीन स्त्री-विमर्श की जमीन तैयार करता है।

जैनेन्द्र और यशपाल द्वारा प्रस्तुत स्त्री विमर्श को समकालीन परिप्रेक्ष्य में देखा जाए जो यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या समाज में मृणाल, बंती, सरस्वती, कल्याणी का शोषण समाप्त हो गया है? तारा, कनक, मृणाल, सुनीता, अनिता, अपरा, हेना, मोती आदि स्त्री-पात्रों का संघर्षमय जीवन तथा उनके स्वतंत्रताबोध की वैचारिकी समकालीन परिवेश को किस प्रकार भिगो रही है?

इन प्रश्नों के आलोक में यह तथ्य उभरकर सामने आ रहा है कि बदलते समाज में स्त्री-शिक्षा के प्रति जागरूकता तो आई है, लेकिन लड़का-लड़की का लिंगगत भेदभाव आज भी जारी है। ऊपर से सब ठीक-ठाक दिखते हुए भी भीतर कुछ ऐसा जरूर जर्जर अवस्था में है जिसकी मरम्मत शेष है। मृणाल की भांति आज प्रिया, रितु, सोमा को भी अपने पति-गृह से यह आश्वासन नहीं मिलता कि उनका घर मेरा भी हो सकता है। 'बंती, सरस्वती जैसी न जाने कितनी स्त्रियाँ बलात्कृत होकर आत्महत्या करने या फिर आत्महंता जीवन जीने को मजबूर हैं।'[12]

बाज़ारवाद के इस युग में हर गली, मुहल्ले से लेकर महानगरों की पॉश कालोनियों में 'कल्याणी' आज भी मौजूद है। परिवार के लिए सिर्फ और सिर्फ कमाने की मशीन। समकालीन उपन्यासों में कल्पना और सुषमा के रूप में कल्याणी का नया अवतार भी उपस्थित हुआ है, जहाँ स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता ने उन्हें उस गुरुता को चुनने को मजबूर किया है जो एक उम्र के पश्चात उनकी 'नीयती' में बदल जाये।

उषा, कनक, तारा की भाँति आज की स्त्री भी वस्तु और व्यंजन के बजाए एक मानव के रूप में अपनी पहचान बना रही है। उषा तथा कनक मरे हुए साँप के केंचुल से स्वयं को मुक्त करती हैं। समकालीन परिवेश में प्रिया, रचना, सोमा

'मृत-संबंधों' से आजाद होती नजर आती हैं। कनक, उषा, तारा, प्रिया, रचना, सोमा ऐसे संबंधों को झूठा-सच मानती, पतित्त्व के उस अहंकार को तोड़ती हैं जो समाज के सामने आधुनिकतावादी होने का दंभ भरता है तथा भीतर से वही पारम्परिक पुरुष के संस्कार को आत्मसात किये हुए रहता है। स्त्री के आत्मविश्वास को बल देने में उसकी आत्मनिर्भता ने सबसे बड़ी भूमिका निभाई है। उषा की भाँति आजादी और इज्जत अपने पाँव पर खड़े इंसान की। नीना भी कहती है 'अपने पैरों पर खड़ी स्त्री का कोई निरादर नहीं कर सकता।'

आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए जो स्त्रियाँ घर से बाहर निकलती हैं उन्हें सड़क से लेकर ऑफिस तक नोंच-खाउ प्रवृति वाले पुरूषों द्वारा मानसिक शोषण का शिकार भी होना पड़ता है। पूँजीवादी सभ्यता ने तर्क का जामा पहनाते हुए यौन-स्वच्छंदता को स्त्री-मुक्ति के मिथक के रूप में इस तरह स्थापित किया कि इसकी अवहेलना करने वाली स्त्रियाँ आधुनिक नहीं हो सकती।' आधुनिक स्त्री पर इस मिथक की मार इतनी जबरदस्त है कि वह इतिहास में पहली बार पूर्णत: यौन उपकरण बन गयी है। विचार और प्रचार दोनों ही ओर से यौन क्रिया के पक्ष में इतना धुआँधार अभियान चल रहा है कि जो स्त्री यौन-अनुशासन की माँग करती है, उसे झट पिछड़ा, वर्जनाग्रस्त या काम-शीतल (फ्रिज़्ड) मान लिया जाता है।'[13]

जैनेन्द्र मानते थे कि बाजारवाद में स्त्री का 'क्रीता तथा भोग्या' का रूप उभरेगा। स्त्री शोषण से मुक्ति के लिए बाजारवाद की बारीकियों को समझना आज सबसे बड़ी चुनौती है। जहाँ क्रीता के रूप में स्त्री-श्रम को सस्ते में खरीदा जा रहा है और 'प्रोडक्ट' को बेचने के लिए बाजार ने स्त्री का 'प्रोडक्ट' बना दिया है। चित्रा मुद्गल जैसी स्त्री लेखिका भी मानती हैं कि 'बाजार में बिक रही स्त्री का खरीददार तो पुरुष ही है न!' बाजारवाद के इस युग में शोषण का रूप बदल गया है। जिस स्त्री के पास पैसा है वह भी शोषित है और जिसके पास नहीं है, वह तो शोषित है ही। अर्थ को माध्यम बनाकर किये गये स्त्री-शोषण के विविध आयामों का रहस्य धीरे-धीरे बेनकाब हो रहा है।

जैनेन्द्र स्त्री की भूमिका को घर से जोड़कर देखते हैं और स्त्री की भूमिका के साथ ही स्त्री के सम्मान की वकालत करते हैं। 'परख' की कट्टो से 'दर्शाक' की रंजना तक का सफर जैनेन्द्र के स्त्री पात्रों में आधुनिक मूल्यबोध लिए आत्मबोध से संचालित होता है, परन्तु फिर भी सुनीता को बाहर जाने के लिए हरिप्रसन्न का सहारा लेना पड़ता है। रंजना बौद्धिक विचारों की प्रखरता के बावजूद घर में लौट आती है। जैनेन्द्र स्त्री मुक्ति के प्रश्नों को तो उठाते हैं, मगर स्त्री को घर से अलग देखने की कल्पना भी नहीं करते। जैनेन्द्र का स्त्री विमर्श मुख्यत: स्त्री की आधी दुनिया अर्थात परिवार तक सीमित है। ऐसे में कहा जा सकता है-'जैनेन्द्र अपनी नायिकाओं के लिए विद्रोह तक सीमित है। जैनेन्द्र अपनी नायिकाओं को विद्राह और आधुनिकता के निर्देश नहीं देते, उसे सद्गृहस्थ और पुरुष के लिए प्रेरणा के सिंहासन पर बिठाना चाहते हैं। इस प्रकार उसे भक्ति नहीं बल्कि भक्ति के सुन्दर स्त्रोत के रूप में देखना चाहते हैं।'[14] परन्तु स्त्री, शक्ति के स्त्रोत के साथ ही शक्ति का पर्याय बनना चाहे तो उसकी इच्छा को क्यों दबाया जाये? यशपाल स्त्री-पुरुष समानता का नारा देते हैं अर्थात स्त्री-पुरुष के समान आत्मनिर्भर तथा पुरुष के समान यौन संबंधों के अधिकार को प्राप्त कर ले तो स्त्री मुक्त हो जायेगी। 'स्वातंत्र्य समता अपनी तुष्टि, दूसरे की तुष्टि, शरीरगत कमजोरी, संस्कारग्रस्तता, अस्तित्त्व की शंका आदि समस्त बातों का विचार यशपाल करते हैं। परन्तु एक शर्त के साथ और वह है आत्मविश्वासी ही नहीं आत्मनिर्भर नर-नारी की। आर्थिक तंगी को यशपाल ने पूर्णत: छोड़ दिया है। बेकारी की समस्या को भी वे छोड़ देते हैं और सुभीते से मान लेते हैं कि संसार की समस्त नारियाँ आत्मनिर्भर हैं। यह बात सही है कि मनुष्य की चेतना पर अर्थ का काफी गहरा असर पड़ता है। परन्तु अर्थ के अलावा और भी कतिपय तत्व हैं जो मानव व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। यशपाल बड़ी सरलता से समस्या का समाधान देते हैं।'[15]

एक ओर कात्यायनी जैसी लेखिकाएँ यह प्रश्न उठा रही हैं कि 'क्यों बचा रहे परिवार', वहीं नासिरा भार्मा के विचार से सहमति जताती लेखिकाएँ यह मानकर चल रही हैं कि 'मेरी नजर में सही नारी-मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच और स्त्री की स्थिति को बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो, हर स्थान पर पुरुष तुम से टकरायेगा।'[16] यही कारण है कि 'विमर्श के बदलते स्वरूप की वजह से आज स्त्री की परम्परा से चिढ़ने और आधुनिकता से प्रेम करने की प्रवृत्ति बदल चुकी है। परिवार तोड़ने का नारा अब पारम्परिक परिवार बचाने, उसी में समानता ढूँढ़ने में परिवर्तित हो गया है।' विमर्श के उतरोत्तर विकासक्रम में सामाजिक संस्थाओं के प्रति बदला हुआ दृष्टिकोण जैनेन्द्र और यशपाल द्वारा प्रतिपादित स्त्री-चिंतन से विशेषकर जैनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित स्त्री-चिंतन से जुड़ता है, जहाँ सामाजिक संस्थाओं के लोकतंत्रीय परिवेश में स्त्री स्वतंत्रता की मानवीय अपील की गयी है। समकालीन हिंदी उपन्यास में अपने-अपने मुद्दों से जूझती नयी स्त्री जन्म ले चुकी है। संघर्षों से जुझती इन स्त्रियों ने समस्या और उनके समाधान दोनों को ही ढूँढ़ निकाला है। संतान की चाहत में परिवार वृत्त को तोड़ती सोमा (पीली आँधी), पति की प्रेमिका के साथ सहानुभूतिपूर्वक विचार

रखती चित्रा, विवाह व्यवस्था की दमघोंटु व्यवस्था से मुक्ति पाती प्रिया (छिन्नमस्ता), वैधव्य को झेलती तथा जीवन में आधुनिक मूल्यबोध को लिए वसुधा (तत्सम), प्रेम की छलमयी तस्वीर को रौंदती महक (दिलो दानिश), स्त्री-जीवन की समस्या पर प्रकाश डालती और स्वयं को सत्तर वर्ष की उम्र तक तलाशती रूबी दी (शेष कादम्बरी), पितृसत्ता का स्त्री देह पर अधिकार के भ्रम को तोड़ती नमिता (आवा), देह की नैतिकता से मुक्त हो सरफरोशी की तमन्ना लिए राजनीति में प्रवेश करती अल्मा (अल्मा कबूतरी), आदि ऐसी ही नायिकाएँ हैं, जो विपरीत परिस्थितियों में जीने की वजह तलाशती हैं और स्वयं को स्थापित करती हैं। ये नायिकाएँ जीवन में घटे अच्छे-बुरे की नैतिकता से ऊपर उठकर जीवन से जुड़े अपने मूल्यबोध को निर्माण करती हैं और नयी नैतिकता को जन्म भी देती हैं। समकालीन स्त्री-विमर्श यह माँग कर रहा है कि स्त्री-पुरुष की दो दुनिया को पाटकर एक ऐसी मानवीय दुनिया बनायी जाए जहाँ न स्त्री घरेलू होने के नाते घुटन की शिकार हो और न ही आत्मनिर्भरता के बाजारवादी चंगुल में उलझकर शोषित जीवन जीने के लिए मजबूर हो।

-मनोज कुमार सिंह

शोध छात्र, वर्धमान विश्वविद्यालय, वर्धमान (प.बं.)

संदर्भ

1. मनुस्मृति-मनोज पब्लिकेशन्स, पृष्ठ-347, 348, 349, नई दिल्ली, सं. 2003
2.मनुस्मृति-मनोज पब्लिकेशन्स, पृष्ठ-347 नई दिल्ली, सं. 2003
3.औरत अस्तित्व और अस्मिता (महिला लेखन का समाज शास्त्रीय अध्ययन) अरविन्द जैन, पृष्ठ-14, सारांश प्रकाशन, प्र.सं.-2003, दिल्ली
4.औरत होने की सजा, अरविंद जैन, पृष्ट-12, 13, राजकमल प्रकाशन, द्वि.सं.1999
5.स्त्री अस्मिता : साहित्य और विचारधारा, संपादक-जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृष्ठ-206, आनन्द प्रकाशन, कोलकाता, सं. 2004
6.अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर, अर्चना वर्मा, पृष्ठ-121, मेधा बुक्स, दिल्ली, सं. 2008
7.अनाम स्वामी : जैनेन्द्र, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.2000, पृष्ठ-16
8.नारी : जैनेन्द्र कुमार, अंतरा प्रकाशन, पृष्ठ-37, नई दिल्ली, द्वि.सं.-2003
9.अस्मिता विमर्श के स्त्री-स्वर : अर्चना वर्मा, पृष्ठ-120, मेधा बुक्स, नई दिल्ली
10.झूठा सच भाग-2 : यशपाल, पृष्ठ-51, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद सं. 2007
11.नंगे पाँव मरू यात्रा, नारी व्यथा से विमर्श तक, डॉ.गीता शर्मा, पृष्ठ-250, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
12.पीली आँधी-प्रभा खेतान, पृष्ठ-257,258, राजकमल प्रकशन, नई दिल्ली
13.स्त्री-पुरुष कुछ पुनर्विचार, सं.राजकिशोर, पृष्ठ-83 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
14.तद्भव-संपादक-अखिलेश, अंक-13 अक्टूबर 2005, लखनऊ, पृष्ठ-44
15.यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना-डॉ.ह.श्री सान, सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-258, सं.1988
16.स्त्री परामर्श और आधुनिकता, सं.राजकिशोर, पृष्ठ-154, वाणी प्रकाशन, सं. 2004
17.स्त्री परामर्श और आधुनिकता, सं.राजकिशोर, पृष्ठ-154, वाणी प्रकाशन, सं. 2004

पत्र-पत्रिकाएँ

संगम (मासिक)
संपादक-हरविन्द्र कमल
30-ई.पी.आर.टी.सी. कालोनी, मॉडल टाउन, पटियाला
मूल्य-25 रुपये

ग़ज़ल के बहाने (अ.नि.) नि:शुल्क
संपादक-डॉ.दरवेश भारती
5451, शिव मार्केट, न्यू चन्द्रावल, जवाहरलाल नगर,
नई दिल्ली-07

शिक्षा सारथी (मासिक)
संपादक-डॉ.देवयानी सिंह
माध्यमिक शिक्षा विभाग हरियाणा, शिक्षक सदन,पंचकूला
मूल्य-15 रुपये

अंगिरापुत्र (मासिक)
संपादक-रामशरण युयत्सु
419/3, शांति नगर, पटियाला चौक, जींद-126102
मूल्य-20 रुपये

मोमदीप (त्रैमासिक)
संपादक-डॉ.गार्गीशरण मिश्र 'मराल'
1436/बी, सरस्वती कॉलोनी, चेरीताल वार्ड, जबलपुर
मूल्य-15 रुपये

अभिनव प्रयास (त्रैमासिक)
संपादक-अशोक अंजुम
स्ट्रीट-2, चन्द्रविहार कॉलोनी, क्वारसी बाईपास, अलीगढ़
मूल्य-25 रुपये

कथा समय (मासिक)
संपादक-डॉ.मुक्ता
हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पी-16 सेक्टर-14, पंचकूला
मूल्य-15 रुपये

अनन्तिम (त्रैमासिक)
संपादक-सतीश गुप्ता
के-221 यशोदा नगर, कानपुर-11
मूल्य-15 रुपये

नमन उन्हें शत-बार

अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की रचनाएँ

चर्चा अपने क़त्ल का अब दुश्मनों के दिल में है
देखना है ये तमाशा कौन सी मंज़िल में है

क़ौम पर कुर्बान होना सीख लो ऐ हिन्दियो
ज़िन्दगी का राज़े-मुज्मिर खंजरे-क़ातिल में है

साहिले-मक़सूद पर ले चल खुदारा नाखुदा
आज हिन्दुस्तान की कश्ती बड़ी मुश्किल में है

दूर हो अब हिन्द से तारीकि-ए-बुग्जो-हसद
अब यही हसरत यही अरमाँ हमारे दिल में है

बामे-रफ़अत पर चढ़ा दो देश पर होकर फ़ना
'बिस्मिल' अब इतनी हविश बाकी हमारे दिल में है

न चाहूँ मान दुनिया में, न चाहूँ स्वर्ग को जाना
मुझे वर दे यही माता रहूँ भारत पे दीवाना

करूँ मैं क़ौम की सेवा पड़े चाहे करोड़ों दुख
अगर फिर जन्म लूँ आकर तो भारत में ही हो आना

लगा रहे प्रेम हिन्दी से, पढ़ूँ हिन्दी लिखुँ हिन्दी
चलन हिन्दी चलूँ, हिन्दी पहरना, ओढ़ना खाना

भवन में रोशनी मेरे रहे हिन्दी चिरागों की
स्वदेशी ही रहे बाजा, बजाना, राग का गाना

लगें इस देश के ही अर्थ मेरे धर्म, विद्या, धन
करूँ मैं प्राण तक अर्पण यही प्रण सत्य है ठाना

नहीं कुछ गैर-मुमकिन है जो चाहो दिल से 'बिस्मिल'
तुम उठा लो देश हाथों पर न समझो अपना बेगाना

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाजु-ए-कातिल में है
करता नहीं क्यूँ दूसरा कुछ बातचीत
देखता हूँ मैं जिसे वो चुप तेरी महफ़िल में है
ऐ शहीद-ए-मुल्क-ओ-मिल्लत मैं तेरे ऊपर निसार
अब तेरी हिम्मत का चरचा गैर की महफ़िल में है
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां
हम अभी से क्या बतायें क्या हमारे दिल में है
खींच कर लायी है सब को कत्ल होने की उम्मीद
आशिकों का आज जमघट कूचा-ए-कातिल में है
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

है लिये हथियार दुशमन ताक में बैठा उधर
और हम तैयार हैं सीना लिये अपना इधर
खून से खेलेंगे होली गर वतन मुश्किल में है
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

हाथ जिन में हो जुनूँ कटते नहीं तलवार से
सर जो उठ जाते हैं वो झुकते नहीं ललकार से
और भड़केगा जो शोला-सा हमारे दिल में है
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

हम तो घर से निकले ही थे बाँधकर सर पे कफ़न
जान हथेली पर लिये लो बढ़ चले हैं ये कदम
ज़िन्दगी तो अपनी मेहमान मौत की महफ़िल में है
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

यूँ खड़ा मक़तल में क़ातिल कह रहा है बार-बार
क्या तमन्ना-ए-शहादत भी किसी के दिल में है
दिल में तूफ़ानों की टोली और नसों में इन्कलाब
होश दुश्मन के उड़ा देंगे हमें रोको ना आज
दूर रह पाये जो हमसे दम कहाँ मंज़िल में है
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

वो ज़िस्म भी क्या ज़िस्म है जिसमें ना हो खून-ए-जुनून
तूफ़ानों से क्या लड़े जो कश्ती-ए-साहिल में है
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

रघुविन्द्र यादव की कुछ कृतियाँ

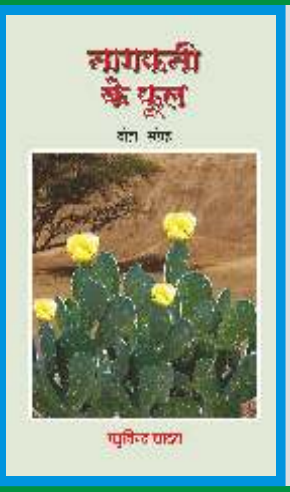

नागफनी के फूल
(दोहा संग्रह)
रघुविन्द्र यादव
आलोक प्रकाशन
प्रकृति-भवन, नीरपुर, नारनौल
मूल्य-100 रुपये, पृष्ठ-80
जीवन और जगत से जुड़े
424 धारदार और लोकप्रिय
दोहों का संग्रह।

शीघ्र आ रहा है
वरिष्ठ साहित्यकार
डॉ.देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' की
भूमिका से सजा
रघुविन्द्र यादव
के धारदार
दोहों का संग्रह-
वक़्त करेगा फ़ैसला

शीघ्र का रहा है
वरिष्ठ साहित्यकार
डॉ.तुकाराम वर्मा की
भूमिका से सजा
रघुविन्द्र यादव
के धारदार कुण्डलिया छंदों
का संग्रह-
मुझ में संत कबीर

पर्यावरण परिचय
रघुविन्द्र यादव
आलोक प्रकाशन
प्रकृति-भवन, नीरपुर, नारनौल
मूल्य-40 रुपये, पृष्ठ-88
पर्यावरण संबंधी 555
प्रश्नोत्तरों का अनूठा संग्रह

कामयाबी की यात्रा
(प्रेरक निबंध संग्रह)
रघुविन्द्र यादव, शिवताज आर्य
आलोक प्रकाशन
प्रकृति-भवन, नीरपुर, नारनौल
मूल्य-65 रुपये, पृष्ठ-88
सकारात्मक सोच विकसित
करने वाले प्रेरक निबंधों का
संग्रह

जीने की राह
(प्रेरक प्रसंग संग्रह)
रघुविन्द्र यादव
आलोक प्रकाशन
प्रकृति-भवन, नीरपुर,नारनौल
मूल्य-30, पृष्ठ- 80
रघुविन्द्र यादव द्वारा रचित
और सम्पादित प्रेरक प्रसंगों
का संग्रह